tween the titrimatic (complexo-
tometric method of determining calcium in urine. $y = 0.06 + 0.998 \cdot x$; $r = 0.992$.

Fig. 2: Correlation between the flamephotometrically (FLAPHO 4) measured calcium content anc
phate content in urine. $y = 297.3 + 6.20 \cdot x$

ar calcium determinations
4 (the method selected by
sser number of individual
ery high saving of time.

) displays the graphical
he correlation of the cal-
nd of the phosphate con-
on ascertained between
as extremely weak (r =
ation of the phosphate
me-photometric calcium
dding phosphate to the
s comes fully up to our requirements. The same applies to the sodium and potassium content of the calibrating solutions employed. The specified Na, K and PO_4^{III} additives were determined from the analyses of 30 urine samples.

References

[1] SCHNEIDER, H.-H.: Das Harnsteinleiden, Möglichkeiten seiner Vorbeugung und Behandlung. Berlin 1971.

[2] FRICK, H., G. BARTSCH and P. HUBER: Der primäre Hyperaparthyreoidismus und seine Beziehung zum Mineralstoffwechsel beim Harnsteinleiden. III Harnsteinsymposium 1973. Wiss. Friedrich-Schiller-Universität Jena, volume (Scientific contributions of Friedrich-Schiller-University) 1973.

[3] STANTON, H. K., and R.
NAN: Clinical Chemistry 15 (1
31–34.

[4] Calciumbestimmung nach
7. Auflage. Berlin 1968.

[5] TIEDT, H. J.: Bestimm
anorganischen Phosphors im Serum
Labortechnik. 14 (1973) 34–39.

nd flamephotometrically measured calcium and phosphate contents in 59 urine samples

Phosphate mg/100 ml	Calcium (complexo-metric) meq/l	Calcium (flame-photometric) meq/l	Phosphate mg/100 ml	Calcium (complexo-metric) meq/l	Calcium (flame-photometric) meq/l	Phosphate mg/100 ml	Calcium (complexo-metric) meq/l	Calcium (flame-photometric) meq/l	Phos
[illegible]	4.34	4.15	221	3.60	3.65	595	11.30	11.10	[illegible]

Calcium determination in urine using the FLAPHO 4 Flame Photometer of VEB Carl Zeiss JENA

Klaus Winnefeld
Medical Clinic of the Jena FRIEDRICH-SCHILLER University

...n determinations in urine – when ...rectly performed – show a great ...ability in the diagnosis of various ... In the case of hyperparathyreoidism, ...etastases and acidotic metabolic ..., this urine constituent is in... ...y excreted. A reduced excretion may ...rved, when the parathyroid gland ... a hypofunction. What should not ...ght of in this conjunction is the wide... ...rolithiasis, which SCHNEIDER [1] ... ...demic. If mineral ...

pointers are frequently found saying that flame-photometric calcium determination methods are rather problematic. An essential factor of interference is said to be the presence of phosphates. A high excitation energy for calcium has likewise a complicating effect on flame-photometric determinations. For this reason, the phosphate content was determined in all analyzed urine samples.

The complexometric calcium determination of th... ...R-VII (GDR) was chosen by us ...

on the calcium determination, these solutions should contain 140 meq Na/l, 40 meq K/l and 3400 mg phosphate/l. In the event of the calcium values lying below or above the specified calibration range, a lesser or higher dilution of the urine sample was required. The calibrating solutions were checked at the beginning and at the end of each series of measurement. Further it proved quite useful, to add a calibrating solution after each tenth urine dilution, in order to check the stability ...

॥ श्रीः ॥

हरिदास–संस्कृत–ग्रन्थमाला

१९४

॥ श्रीः ॥

मर्म-विज्ञान

लेखक—

आयुर्वेदाचार्य पं० रामरक्ष पाठक

जी० ए० एम० एस० (पटना) एफ़० ए० आई० एम० (मद्रास)

आचार्य–अयोध्या शिवकुमारी आयुर्वेद महाविद्यालय

बेगूसराय, मुँगेर ।

भूमिका लेखक–

आयुर्वेदाचार्य श्री दुर्गादत्त शास्त्री

प्रधान चिकित्सक,

एस्० एल्० मारवाड़ी हिन्दू अस्पताल, आयुर्वेद विभाग, काशी

अध्यक्ष निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ

२६ वां अधिवेशन (बरोडा)

प्रकाशक—
जयकृष्णदास हरिदास गुप्तः—
चौखम्बा संस्कृत सीरिज़ आफिस
बनारस
वि० सं० २००३

मूल्य ३॥)

मुद्रक—
विद्याविलास प्रेस
काशी।

१९४९

समर्पण

अतुलित कीर्ति कौमुदी कलित आयुर्वेदसर्वस्व प्रातःस्मरणीय

वैद्यरत्नायुर्वेदरत्नाकरादिभूषणभूषित

पुण्यश्लोक गुरुप्रवर

दिवंगत पण्डित व्रजविहारी चतुर्वेदी जी

की पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित।

—रामरक्ष पाठक।

भूमिका

आयुर्वेदीय संहिताओं में शारीरज्ञान को आत्रेय और धान्वन्तर आदि सभी संप्रदायों ने कायचिकित्सा तथा शल्यकर्म के निःसंशय ज्ञान के लिये अत्यावश्यक बताया है। चरक का कथन है—

"शरीरं सर्वथा सर्वं सर्वदा वेद यो भिषक्।
आयुर्वेदं स कार्त्स्न्येन वेद लोकसुखप्रदम् ॥"

(च० शा० अ० ६)

"शरीरसंख्यां यो वेद सर्वावयवशो भिषक्।........
तदज्ञाननिमित्तेन स मोहेन न युज्यते ॥"

(च० शा० अ० ७)

सुश्रुत का भी उपदेश है—

"शरीरे चैव शास्त्रे च दृष्टार्थः स्याद् विशारदः।
दृष्टश्रुताभ्यां सन्देहमवापोह्याचरेत् क्रियाः ॥"

(सु० शा० अ० ५)

सुश्रुतसंहिता के शारीरस्थानमें जिस प्रकार दर्शनशास्त्र (सांख्य, वैशेषिक, न्याय एवं वेदान्त) तथा आनुवंशिकता (Heredity) सुप्रजाजनन (Eugenics) गर्भवृद्धिविज्ञान (Embryology) शारीरकार्यविज्ञान (Physiology) मनोविज्ञान (Psychology) स्त्रीरोग और प्रसूतिविज्ञान (Gynecology & midwifery) कौमारभृत्य (Paediatrics) आदि का सूत्र रूप में वर्णन है उसी प्रकार प्रत्यक्षशारीर (Anatomy) का भी संक्षिप्त निर्देश है। कुछ लोग प्रत्यक्षशारीर (एनाटोमी) के साथ तुलना में लाने का प्रयास

करते हुए सुश्रुतशारीर की श्रेष्ठता में संदेह कर बैठते हैं। पर सुश्रुत के शारीरस्थानान्तर्गत विषयों को निष्पक्ष वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो वस्तुतः वह गंभीर तत्त्वों से परिपूर्ण एवं सर्वतोऽधिक श्रेष्ठ प्रतीत होगा। उसको पाश्चात्त्यपद्धति की एनाटोमी की तुलना में लाने का प्रयास तो भारी भ्रम का सूचक है। एनाटोमी का यौगिक अर्थ व्यवच्छेदन और रूढार्थ मृतशोधन से उपलब्ध शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्गों का ज्ञान है। शारीरस्थान में निरूपित विविध विषयों को दृष्टिगत करने से कोई भी विज्ञ जन यह सरलता से समझ सकता है कि एनाटोमी (प्रत्यक्षशारीर) सुश्रुतशारीरस्थान का एक अंश कहा जा सकता है, पूरा शारीरस्थान नहीं। ऐसी स्थिति में केवल कल्पना के आधार पर उसे शारीरस्थान की समता में लानेका प्रयास अनभिज्ञता का द्योतक है।

सुश्रुत के मर्मनिर्देश नामक अध्याय में मर्मों के विवरण-प्रसङ्ग में अनेक अङ्गों और स्थानों का निरूपण बहुत ही उचित पद्धति से सूत्र-रूप में किया गया है। प्राचीन काल में यह परिपाटी थी कि ग्रन्थ सूत्ररूप में लिखे जाते थे पर उनका विशेष ज्ञान गुरुमुख से ही प्राप्त किया जाता था।

मर्म, मांस, सिरा, स्नायु, अस्थि और सन्धियों के सन्निपात (संयोगस्थान) कहे जाते हैं। इनमें आघात अथवा वेध होनेसे मृत्यु वा मरणतुल्य कष्ट होता है। इसी लिये मर्म जीवस्थान या वायटल पार्ट्स (Vital parts) भी कहे जाते हैं। आचार्य सुश्रुत का कथन है—

"मर्माणि नाम मांससिरास्नाय्वस्थिसन्धिसन्निपाताः, तेषु स्वभावत एव विशेषेण प्राणास्तिष्ठन्ति, तस्मान्मर्मस्वभिहतास्तांस्तान् भावानापद्यन्ते"। (सु० शा० अ० ६)

मर्मों का ज्ञान शस्त्र-क्षारादि का प्रणिधान करनेवाले चिकित्सक के लिये परमावश्यक है। यदि यन्त्रशस्त्रक्षारादि का प्रयोग करते समय

चिकित्सक को मर्मों का ज्ञान अथवा ध्यान न रहे तो तत्काल अनिष्ट हो सकता है। इसी कारण से प्राचीन आचार्यों ने मर्मों को आधा शल्यतन्त्र कहा है।

"मर्माणि शल्यविषयार्धमुदाहरन्ति
यस्माच्च मर्मसु हता न भवन्ति सद्यः।
जीवन्ति तत्र यदि वैद्यगुणेन केचित्
ते प्राप्नुवन्ति विकलत्वमसंशयं हि॥

मर्माभिघातस्तु न कश्चिदस्ति
योऽल्पात्ययो वापि निरत्ययो वा।
प्रायेण मर्मस्वभिताडितास्तु
वैकल्यमृच्छन्त्यथवा म्रियन्ते॥

मर्माण्यधिष्ठाय हि ये विकारा
मूर्च्छन्ति काये विविधा नराणाम्।
प्रायेण ते कृच्छ्रतमा भवन्ति
नरस्य यत्नैरपि साध्यमानाः॥

(सु० शा० अ० ६)

मर्मों पर अभिघात होने से प्रायः मृत्यु अथवा अङ्गविकलता होती है यह अनुभवसिद्ध निर्णय है।

पाश्चात्य वैद्यकशास्त्र में अन्य मर्मों को विशेष महत्त्व नहीं दिया गया है, वहां जीवनरक्षा के लिये हृदय, मस्तिष्क और फुफ्फुस ये तीन ही अङ्ग मुख्य माने गये हैं। आयुर्वेद में भी अन्य मर्मों की अपेक्षा त्रिमर्म ही विशेष महत्त्व के बताये गये हैं। चरकसंहिता में त्रिमर्मीय-सिद्धि के नाम से सिद्धिस्थान में एक स्वतन्त्र अध्याय ही लिखा गया है। जिसमें यह उपक्रम है—

"सप्तोत्तरं मर्मशतमस्मिन् शरीरे स्कन्धशाखाश्रितमग्निवेश! तेषा-

मन्यतमस्य प्रपीडया समधिका पीडा भवति चेतनानिबन्धवैशेष्यात्। तत्र शाखाश्रितेभ्यो मर्मभ्यः स्कन्धाश्रितानि गरीयांसि, शाखानां तदाश्रितत्वात्। स्कन्धाश्रितेभ्योऽपि हृद्बस्तिशिरांसि तन्मूलत्वाच्छरीरस्य"। (च० सि० अ० ६)

अन्तर केवल इतना ही है, यहां फुफ्फुस का निर्देश न कर तीसरा प्रधान मर्म बस्ति माना गया है। पर वक्षःस्थल के स्तनमूल, स्तनरोहित, अपलाप, अपस्तम्भ नामक जो मर्म बताये गये हैं उनका फुफ्फुस से सम्बन्ध अवश्य आता है। स्तनमूल पर अभिघात होने से "कफपूर्णकोष्ठतया कासश्वासाभ्यां म्रियते,"- स्तनरोहित पर आघात होने से-"लोहितपूर्णकोष्ठतया कासश्वासाभ्यां च म्रियते"—अपलाप पर वेध होने से "तत्र रक्तेन पूयभावं गतेन मरणम्" तथा अपस्तम्भ पर वेध होने से "वातपूर्णकोष्ठतया कासश्वासाभ्यां च मरणम्"—यह वर्णन आता है। यहां कोष्ठशब्द से फुफ्फुस का ही बोध होता है। वक्षःस्थल में आघात या वेध होने से वहां की भित्ति वा पर्शुकाएं आदि टूट फूट जाती हैं तो परिणाम यह होता है कि बाह्यवायु फुफ्फुसावरण के भीतर प्रविष्ट हो जाता है। उससे वातपूर्णकोष्ठता (Pneumothorax) होती है। इसी प्रकार बाह्य जीवाणुओं के अन्तःप्रवेश से कफपूर्णकोष्ठता (न्युमोनिया (Pneumonia) व्रांको न्यूमोनिया) भी हो सकती है। वक्षःस्थल की भीतरी रक्तवाहनियों के फट जाने से लोहितपूर्णकोष्ठता (Haemothorax) या फुफ्फुसगत शोणितस्राव हो सकता है। अथवा वहां विकृति उत्पन्न होकर पूयभाव (Empyema), उरोगत यक्ष्मा (Pulmonary tuberculosis) आदि रोग हो सकते हैं। वक्षःस्थल के स्तनमूलादि मर्म कालान्तर प्राणहर कहे गये हैं। उनमें आघात होने से उत्पन्न होने वाले ये विकार भी कालान्तर प्राणहर ही हैं। पर इनका संबन्ध फुफ्फुस से ही रहता है।

आयुर्वेद के हृदय, वस्ति और शिर (मस्तिष्क) ये तीनों मर्म वस्तुतः सद्यःप्राणहर हैं। अत एव चरक का लिखना है–

"तेषां त्रयाणामन्यतमस्यापि भेदादाश्वेव शरीरभेदः स्यात्...... तस्मादेतानि विशेषेण रक्ष्याणि बाह्याभिघाताद् वातादिभ्यश्च।

(च० सि० अ० ९)

"हृदये मूर्ध्नि वस्तौ च नृणां प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
तस्मात्तेषां सदा यत्नं कुर्वीत परिपालने" ॥ ६ ॥

(च० सि० अ० ९)

इन मर्मों पर अभिघात होने से सद्यःमरण किस प्रकार होता है यह सब प्रकृतपुस्तक में विद्वान् लेखक ने स्पष्ट बताया है। संहिता-ग्रन्थों में मर्मनिर्देश सूत्ररूप में है, उसका सोपपत्तिक सचित्र निरूपण इस पुस्तक में विस्तार से किया गया है। साथ ही यह विशेषता है कि मर्मों में अभिघातादि से उत्पन्न होने वाली विकृतियों की चिकित्सा भी बताई गई है। इससे मर्मविज्ञान चिकित्सक, अध्यापक एवं छात्र सभी के लिये विशेष उपयोगी हो गया है। इस पुस्तक के लिखने के लिये अयोध्या शिवकुमारी आयुर्वेद महाविद्यालय, बेगूसराय (मूंगेर) के प्रधान आचार्य हमारे मित्र श्री पं० रामरक्ष पाठक आयुर्वेदाचार्य ज० ए० एम० एस० (पटना) एफ० ए० आई० एम० (मद्रास) तथा प्रकाशन के लिये, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, काशी के अध्यक्ष श्री जयकृष्णदास हरिदासजी गुप्त विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

दीपावली संवत् २००६ }
बनारस। }

दुर्गादत्त शास्त्री

प्रस्तावना

"अहं हि धन्वन्तरिरादिदेवो जरारुजामृत्युहरोऽमराणाम् ।
शल्याङ्गमङ्गैरपरैरुपेतं प्राप्तोऽस्मि गां भूय इहोपदेष्टुम् ॥"

(सु. सू. १)

औपधेनव-वैतरण-औरभ्र-पौष्कलावत-करवीर्य-गोपुररक्षित-सुश्रुत प्रभृति जिज्ञासुगण जब मानवकल्याण की कामना से आयुर्वेद का ज्ञान-लाभ करने के लिये भगवान धन्वन्तरि के पास, अन्वय-वयः-शील-शौर्य-शौचाचार-विनय-शक्ति-बल-मेधा-स्मृति-धृति-मति-प्रणिपातयुक्त होकर शिष्यरूपेण उपपन्न हुए, तब शल्यागमागाधपारावारपरायण भगवान धन्वन्तरि ने उन लोगों का स्वागत करते हुए अपना उक्त परिचय दिया था और उन्हें शल्यप्रधान अष्टांगायुर्वेद का उपदेश किया था। वर्त्तमान सुश्रुतसंहिता महर्षि सुश्रुत द्वारा सुश्रुत उक्त उपदेश का ही संकलन है। प्रतिसंस्कर्त्ताओं के अज्ञतावश यत्र तत्र कुछ भ्रमात्मक वाक्यों के होते हुए भी यह संहिता अपने ढंग की अद्वितीय है। शल्यशास्त्र के ज्ञानार्थ शारीर शास्त्र का अविकल ज्ञान परम आवश्यक है। 'शारीरे सुश्रुतः श्रेष्ठः' यह उक्ति प्रसिद्ध होने पर भी सूत्ररूपेण उपदिष्ट सुश्रुत का शारीर सर्वसुलभ तथा सुबोध नहीं होता। अतः सुश्रुत शारीर की विस्तृत व्याख्या अत्यावश्यक है। अब तक जितनी व्याख्यायें उपलब्ध हैं, उनमें श्रीगोविन्दभास्कर घाणेकर की व्याख्या सर्वाधिक सुबोध तथा विशद है। परन्तु यह व्याख्या भी सम्पूर्ण सुश्रुत की न होने से अब तक अपूर्ण ही है। शारीर वर्णन शारीर स्थान में ही सीमित न होने से जब तक सम्पूर्ण सुश्रुतसंहिता की व्याख्या उक्त ढंग से नहीं हो जाती, तबतक आयुर्वेद का शरीर वर्णन अविकल नहीं हो सकता। अस्तु—

मानवशरीरस्थ मर्मों का वर्णन आयुर्वेद का एक विशिष्ट विषय है, जो अपने ढंग का अद्वितीय और निराला है। मर्मों का वर्णन आयुर्वेद

के मर्मों का ही ज्ञान नहीं कराता, अपितु ऋषियों के सुविस्तृत शारीर ज्ञान का सबसे पुष्ट प्रमाण है। पाश्चात्य चाकचिक्य में चकाचौंध नौकरशाही मनोवृत्तियों वाले पथभ्रष्ट जनों से मेरा सानुरोध निवेदन है कि वे एक बार आयुर्वेदोक्त मर्म-वर्णनों का स्वाध्याय करें और अपने आचार्यगण के इस कमनीय कीर्त्ति का उचित आदर करते हुए इस परमपावन आयुर्वेद को पंकिल करनेवालों को चुनौती दें।

मर्मविज्ञान की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए आचार्यों ने इसे शल्यशास्त्र का आधा विषय कहा है। जैसे—"मर्माणि शल्यविषयार्ध-मुदाहरन्ति" (सु. शा. ६)। इसका कारण यह है कि शल्यापहरण में मर्मों का ज्ञान परमावश्यक है। मर्म की रचना आदि के ज्ञानाभाव में शल्यापहरण कदापि निरापद नहीं हो सकता। इसीलिये आचार्यों ने कहा है कि—

"एतत्प्रमाणमभिवीक्ष्य वदन्ति तज्ज्ञाः
शस्त्रेण कर्मकरणं परिहृत्य मर्म।
पार्श्वाभिघातितमपीह निहन्ति मर्म
तस्माद्धि मर्मसदनं परिवर्जनीयम्॥" (सु. शा. ६)

मर्मविज्ञान पुस्तक में प्रत्येक मर्मों की रचना सचित्र समझाने का प्रयत्न किया गया है। मर्म की रचना में जिन २ अवयवों का सन्निपात हुआ है, उनका आधुनिक नामकरण कर उन अंगो के महत्त्व को समझाया गया है और मर्माभिघातजन्य उपद्रवों का सकारण विस्तृत वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त परिणामानुसार मर्मों के नामकरण की सार्थकता भी दर्शायी गई है। साथ ही अभिघातजन्य उपद्रवों की संक्षेप से चिकित्सा का भी संकेत किया गया है।

यह उक्त सुश्रुत की व्याख्या की दिशा में एक प्रयास है, जो छात्रों के अध्यापन-काल-जन्य परिस्थितियों का परिणाममात्र है। अतः वे छात्र जिनके अध्यापनवश इस प्रयास की प्रवृत्ति हुई, तथा वे विद्यालय जिन्होंने एतदर्थ अवसर प्रदान किया, मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। साथ

ही आयुर्वेद तथा आयुर्वेदेतर ग्रंथ के लेखकगण जिनकी सहायता से इस कार्य को सम्पन्न करने में सामर्थ्य प्राप्त हुआ है, उन सभी महानुभावों का मैं आभार मानता हूं।

मर्मों के वर्णन में यद्यपि मैंने पर्याप्त सतर्कता रखी है, तथापि त्र्युटियों का होना असंभव नहीं; अतः आयुर्वेद के मर्मज्ञों से सानुरोध निवेदन है कि जहां कहीं उन्हें किसी प्रकार की त्रूटि दीख पड़े, कृपया सूचित करेंगे, जिससे दूसरे संस्करण में उसका सुधार किया जा सके:—

"गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥"

दीपावली
सं० २००६

विनीत—
रामरक्ष पाठक

विषयानुक्रमणिका

इति।

मर्म-विज्ञान

प्रथम अध्याय

मर्म—मर्म शब्द का अर्थ जीवस्थान है इसे अंग्रेजी में **'वाइटल पार्ट्स'** (Vital parts) कहते हैं। जीवस्थान या वाइटल पार्ट्स दोनों ही यौगिक शब्द हैं और दोनों का योगार्थ एक ही है। 'मर्म' शब्द 'मर्मन्' शब्द के प्रथमा के एकवचन का रूप है जो जीवस्थान, सन्धिस्थान और तात्पर्य के अर्थ में व्यवहृत होता है[1]। यदि यहां उपहत होने से मृत्यु हो जाती है[2] ऐसी इसकी निरुक्ति करें तो मर्मों के वर्णन में मर्म के विशेषण रुजाकर, वैकल्यकर और विशल्यघ्न आदि के औचित्य तथा सार्थकता को प्रमाणित करने में कुछ अड़चन दीख पड़ती है। परन्तु रुजाकर मर्म तथा वैकल्यकर मर्म मरणप्रद न होते हुए भी इनकी रुजा तथा विकलता मरणतुल्य अवश्य होती है अतः **'माषराशि छत्रिणो गच्छन्ति'** इस न्याय से उक्त निरुक्ति निर्दोष हो जाती है। सुश्रुत-टीकाकार डल्हण ने भी **"मारयन्तीति मर्माणि"** तथा वाग्भट-**"अपि च मरणकारित्वान्मर्म"** (अ० हृ० शा०) इस प्रकार की निरुक्ति की है। इसके अतिरिक्त रुजाकर तथा वैकल्यकर मर्मों पर अभिघात होने से भी मृत्यु हो सकती है ऐसा आभास सुश्रुत में वैकल्यकर मर्म पर आघात होने पर सतर्क होने के उपदेश से स्पष्ट मिलता है जैसेः—

"हते वैकल्यजनने केवलं वैद्यनैपुणात्।
शरीरं क्रियया युक्तं विकलत्वमवाप्नुयात्" ॥ (सु० शा० ६)

१—"मृ-मनिन्-जीवस्थाने, सन्धिस्थाने, तात्पर्ये च।" (शब्दस्तोम)
२—"म्रियतेऽस्मिन्निति निरुक्तया"

तथा—"जीवन्ति तत्र वैद्यगुणेन केचित्
तेप्राप्नुवन्ति विकलत्वमसंशयं हि ।" (सुश्रुत)

वैकल्य उत्पन्न होने वाले वैकल्यकर मर्मों पर भी आघात होने से मनुष्य वैद्य (चिकित्सक) की निपुणता से ही बचता है परन्तु उसकी (उस अङ्ग की) विकलता तो अवश्य हो जाती है।

मर्मस्थान पर आघात होने से मृत्यु होती है यह तथ्य अति प्राचीन तथा सर्व व्यापक है। इसका पुष्ट प्रमाण यह है कि आयुर्वेदेतर ग्रन्थों में भी इसके समर्थन में वाक्य मिलते हैं जैसे:—

"तथैव तीव्रो हृदि शोकशंकुर्मर्माणि कृन्तन्नपि किं न सोढः।"
(उत्तर रामचरित) इत्यादि।

शरीर के किसी अन्य भाग पर अधिक से अधिक आघात होने से जो परिणाम संभव है वह मर्मस्थान पर थोड़े ही आघात से होता है अतः मर्मस्थान का अधिक महत्व है और उसे आहत होने से बचाने के लिये अधिक उपदेश शास्त्रों में उपलब्ध होता है। मर्म का आघात कभी भी निरत्यय (विना उपद्रव का) अथवा स्वल्पात्यय (कम उपद्रव वाला) नहीं होता अतः इन मर्मस्थलों का ज्ञान परमावश्यक है। यही कारण है कि शल्यशास्त्र में (Surgery) मर्मस्थानों पर शस्त्रोपचार प्रायः माना है जैसे:—

"एतत्प्रमाणमभिवीक्ष्य वदन्ति तज्ज्ञाः
शस्त्रेण कर्मकरणं परिहृत्य कार्यम्।
पार्श्वाभिघातितमपीह निहन्ति मर्म
तस्माद्धि मर्मसदनं परिवर्जनीयम् ॥" (सुश्रुत)

वक्ष्यमाण मर्म के प्रमाणों को ध्यान में रख कर, मर्मस्थलों को छोड़ कर शस्त्रोपचार करना चाहिये; क्योंकि पार्श्ववर्त्ति स्थानों पर भी अभिघात होने से मर्म प्राण ले लेते हैं अतः मर्मसदन (मर्मस्थानों) को छोड़ कर शस्त्रकर्म करना चाहिये।

सुश्रुत ने तो मर्मज्ञान का महत्व बतलाते हुए कहा है कि यह (मर्मज्ञान)

विषय शल्य (ज्ञान) शास्त्र का आधा है क्योंकि मर्म पर आघात होने से शीघ्र ही मनुष्य का अस्तित्व नष्ट हो जाता है और यदि वैद्य की निपुणता वस जीव की रक्षा भी हुई तौभी वह विकलाङ्ग अवश्य ही हो जाता है जैसे:—

"मर्माणि शल्यविषयार्धमुदाहरन्ति, यस्माच्च मर्मसु हता न भवन्ति सद्यः।
जीवन्ति तत्र यदि वैद्यगुणेन केचित्तं प्राप्नुवन्ति विकलत्वमसंशयं हि ॥
(सुश्रुत)

सम्पूर्ण आयुर्वेद शास्त्र में शल्यतंत्र का प्राधान्य शस्त्र क्षाराग्निकर्मों द्वारा तत्काल सफलता के कारण है अतः यंत्र, शस्त्र, क्षार, अग्नि आदि कर्मों के समय यदि मर्मज्ञान न हो तो महान् अनर्थ हो सकता है। इसलिये मर्मज्ञान का होना परमावश्यक है। **"उपायँ चिन्तयन् प्राज्ञः अपायमपि चिन्तयेत्"** के अनुसार शल्यतंत्र विदों ने मर्माभिघातजन्य अपायों से बचने के लिये तथा मर्मज्ञान के महत्व को दर्शाने के लिये ही 'मर्म' को शल्यशास्त्र का आधा विषय (विषयार्ध) कहा है। तात्पर्य यह कि शल्यतन्त्र का श्रेष्ठत्व जिस क्रिया पर अधिष्ठित है वही क्रिया मर्मज्ञान विना महान अनर्थ कर सकती है।

मर्म की व्याख्या करते हुए सुश्रुत ने स्पष्ट कर दिया है कि 'मर्म' उन स्थानों को कहते हैं जहाँ पर मांस-सिरा-स्नायु-अस्थि-संधि-पेशियों और धमनियों का सन्निपात हुआ है। (सुश्रुत-शा० अ० ६) **'मर्माणि नाम मांस-सिरास्नायुसंध्यस्थिसन्निपातास्तेषु स्वभावत एव प्राणास्तिष्ठन्ति।"** अर्थात् उक्त मर्मों पर स्वभाव से ही प्राण निवास करता है। इस के अतिरिक्त शरीरोपादानभूत त्रिधातुओं के मूलभूत उपादान सत्वादिका भी स्थान वहीं है ऐसा वर्णन उपलब्ध होता है जैसे:—

"सोममारुततेजांसि रजःसत्त्वतमांसि च।
मर्मसु प्रायशः पुंसां भूतात्मा चावतिष्ठते ॥
मर्मस्वभिहता तस्मान्न जीवन्ति शरीरिणः।" (सु० शा० ६)

मनुष्यों के मर्मस्थान पर सोम-मारुत और तेज तथा रजोगुण, सत्वगुण

और तमोगुण और जीवात्मा प्रायः निवास करता है। जिस से मर्म पर आघात होने से मनुष्य नहीं जीवित रहता।

उपर्युक्त वर्णन मर्म के वाच्यार्थ तथा महत्व को बतलाने के लिये किया गया है। मर्मों का वर्णन आयुर्वेद में अपनी विशेषता रखता है और आयुर्वेद के आचार्यों के अविकल शारीरज्ञान का पुष्ट प्रमाण है। मर्मों के शास्त्रोक्त वर्णन के ज्ञान के बाद अयुर्वेद के शारीरशास्त्र की प्राञ्जलता निर्विकार हो जाती है।

ऐसे मर्म मानव शरीर में १०७ हैं। बनावट, आहत होने पर होने वाले परिणाम, तथा स्थान आदि के अनुसार इनके अनेक प्रकार हैं। **"सप्तोत्तरं मर्मशतं, तानि मर्माणि पञ्चात्मकानि भवन्ति।"** (सु० शा० मर्म १०७ हैं। ये मर्म पञ्चात्मक अर्थात् पाँच प्रकार का आत्मा वाले **(पञ्चविधः आत्मा येषां तानि पञ्चात्मकानि)** हैं। यहाँ आत्मा का अर्थ शरीर है।[1] अर्थात् जिस से मर्मों का शरीर या देह बनी है वे वस्तुएँ। ये वस्तुएँ पाँच होती हैं, जैसे—(१) मांस, (२) सिरा, (३) स्नायु, (४) संधि, (५) अस्थि। अतः इनके अनुसार मर्मों के नाम पड़े हैं। जैसे—मांसमर्म, सिरामर्म, स्नायुमर्म, अस्थिमर्म और संधिमर्म। परन्तु यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि इन का नामकरण **'उत्कर्षेण व्यपदेशः'** के अनुसार हुआ है[2]। अतः ये मर्म जिन वस्तुओं के नाम से संज्ञित हुए हैं उनके अतिरिक्त भी मर्मनिर्माय वस्तु वहाँ होते हैं। अष्टाङ्ग-हृदय में वागभट्ट ने पाँच के बदले ६ मर्मों के प्रकार का उल्लेख किया है। उस में उक्त मर्मों के अतिरिक्त 'धमनीमर्म' का भी उल्लेख है[3]। इन की कुल संख्या में कोइ अन्तर नहीं है। केवल मांस, अस्थि,

---

१–"आत्मा जीवे धृतौ देहे स्वभावे परमात्मनि।" (वैजयन्ती)
"आत्मा कलेवरे यत्ने स्वभावे परमात्मनि।" (धरणिः)

२–"तत्पुनर्मांससिरास्नाय्वस्थिसंधिसन्निपातः बाहुल्येन तु निर्देशः।"
(अ० सं० शा० ७)

३–"मांसास्थिस्नायुधमनीसिरासंधिसमागमः।
स्यान्मर्मेति ते वात्र सुतरां जीवितं स्थितम्॥" (अ० सं० शा० ४)

स्नायु और सिरा इन मर्मों में से कुछ मर्म निकाल कर उन का स्वतंत्र वर्ग–धमनी मर्म–संज्ञा कर दी गई है। इस का अर्थ यह है कि इन मर्मों की बनावट में परस्पर मतभेद है। सुश्रुत ने—**"न खलु मांससिरास्नायुसंध्यस्थिव्यतिरेकेणान्यानि मर्माणि भवन्ति, यस्मान्नोपलभ्यन्ते।"** इस वाक्य द्वारा अपना मत स्पष्ट कर दिया है कि उक्त पाँच के अतिरिक्त छठवाँ मर्म नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध में डल्हणाचार्य ने लिखा है—**"ननु स्रोतः प्रभृतीनामपि मरणात्मकत्वान्मर्मत्वमस्त्येव, तत्कथ मांसादिव्यतिरेकेणान्यानि मर्माणि नोपलभ्यन्त इत्युक्तम् स्रोतःप्रभृतीनि मांसादीन्यव्यतिरिच्य वर्त्तन्ते, यतो मांसादिष्वेव स्रोतःप्रभृतीनि सन्ति। तस्मान्मासादीनि पञ्चैव मर्माणि इति।"** इस का अभिप्राय यह है कि मर्मों के और भी प्रकार हो सकते हैं, परन्तु इनका समावेश उपर्युक्त प्रकारों में ही हो जाता है। अतः अधिक प्रकार मानने की आवश्यकता नहीं। यही युक्ति वाग्भट्ट के धमनी मर्म के लिये भी लागू है।

उपर्युक्त वर्णन के अनुसार इन पंच विधा मर्मों की संख्या निम्न प्रकार है:—

सुश्रुत के अनुसार	वाग्भट के अनुसार
(१) मांस-मर्म—११	(१) मांस-मर्म—१०
(२) सिरा-मर्म—४१	(२) सिरा-मर्म—३७
(३) स्नायु-मर्म—२७	(३) स्नायु-मर्म—२३
(४) अस्थि-मर्म—८	(४) अस्थि-मर्म—८
(५) संधि-मर्म—२०	(५) संधि-मर्म—२०
	(६) धमनी-मर्म—९
कुल १०७	कुल १०७

(तत्रैकादश मांसमर्माणि, एकचत्वारिंशत् सिरामर्माणि, सप्तविंशतिः स्नायुमर्माणि, अष्टावस्थिमर्माणि, विंशतिः संधिमर्माणि, तदेतत् सप्तोत्तर मर्मशतम्। (सुश्रुत)

अङ्ग भेद से उक्त मर्मों की गणनाः—

प्रत्येक शाखा में—११ इस प्रकार ११ × ४ = ४४

* उदर और छाती में १२

पृष्ठ भाग में १४

ग्रीवा के ऊपर भाग में ३७

कुल १०७

* इस गणना में धर के सामने का भाग (Anterior) और धर के पीछे के (Posteior) भागकर के गणना की गई है। इनमें ३ मर्म उदरप्रदेश में और ९ छाती में होते हैं। (**त्रीणि कोष्ठे, नवोरसि**) इस प्रकार—

शाखाओं में ... ४४

धर में ... २६

ग्रीवा के ऊपर ... ३७

कुल १०७

इन मर्मों पर आघात होने से जो परिणाम होता है उसके अनुसार इनका पांच प्रकार किया गया है जो निम्न हैं।

"तान्येतानि पञ्च विकल्पानि मर्माणि भवन्ति, तद्यथा-सद्यःप्राणहराणि, कालान्तरप्राणहराणि, विशल्यघ्नानि, वैकल्यकराणि, रुजाकराणि चेति।" (सु० शा० ६)

१–साद्यःप्राण हर मर्म ... १९

२–कालान्तर प्राणहर मर्म ... ३३

३–वैकल्यकर मर्म ... ४४

४–विशल्यघ्न मर्म ... ३

५–रुजाकर मर्म ... ८

कुल १०७

मर्मों का घातक काल और अघातक मर्मों का घातकत्व—

उपर्युक्त मर्मों में सद्यःप्राणहर मर्म वे हैं जिन पर आघात होने से सात-दिन के अन्दर मृत्यु हो जाती है। कालान्तर प्राणहर मर्म वे हैं जिन पर अघात होने से दो सप्ताह के बाद अथवा एक मास में मृत्यु हो जाती है। विशल्यघ्न मर्म वे हैं जिन पर (शल्य जन्य) आघात होने पर आहत स्थानों पर शल्य जब तक स्थित रहता है तब तक आहत प्राणी जीता रहता है परन्तु जब शल्य उक्त स्थान से पृथक् किया जाता है तो प्राणी की मृत्यु हो जाती है। इसकी निरुक्ति में लिखा है कि **'विहतं शल्यं हन्तीति विशल्यघ्नम्'। अत्र शल्ये जीवेदनुद्धृते स्वयं वा पतिते पाकात्सद्यो नश्यति तूद्धृते ॥"** (अ० हृ० शा० ४) अर्थात् विशल्यघ्न मर्म पर जबतक शल्य रहता है—नहीं निकाला जाता तबतक, अथवा स्वयं पककर निकल जाने पर मनुष्य जीवित रहता है परन्तु शल्य के निकलने पर सद्यः मृत्यु हो जाती है। शरीर में स्थायी विकलता उत्पन्न करने वाले अर्थात् जहाँ आघात होने से स्थायी विकलता (Disability) उत्पन्न हो जाय वह वैकल्यकर मर्म हैं। रुजाकर मर्म पर आघात होने से तीव्र वेदना होती है। निम्न तीनों मर्मों पर आघात होने से भी मृत्यु हो जाती है। जैसे ऐसे शल्य से विशल्यघ्न मर्म आहत हो जो वहाँ टीक न सके तथा वैकल्यकर एवं रुजाकर मर्म की भी प्रबल आघात हो तब मनुष्य मर जाता है। उक्त परिणामानुसार पंच विधा मर्म शरीर के विभिन्न स्थलों पर अवस्थित है जिनका वर्णन आगे किया जायगा।

सद्यःप्राणहरादिमर्मों की उत्पत्ति में भूतांश और उनके सद्यःप्राणहरत्व के कारण—

"तत्र सद्यः प्राणहराणि आग्नेयानि, अग्निगुणेष्वाशु क्षीणेषु क्षपयन्ति। कालान्तरप्राणहराणि सौम्याग्नेयानि, अग्निगुणेष्वाशु क्षीणेषु क्रमेण च सोमगुणेषु कालान्तरेण क्षपयन्ति।" विशल्यप्राणहराणि वायव्यानि, शल्यमुखावरूद्धो यावदन्तर्वायुस्तिष्ठति तावज्जीवति, उद्धृतमात्रे तु शल्ये मर्मस्थानाश्रितो वायुर्निष्क्रामति, तस्मात् सशल्यो जीवति, उद्धृतशल्यो म्रियते पाकात्पतितशल्यो वा जीवति। वैकल्य-

कराणि सौम्यानि, सोमो हि स्थिरत्वाच्छैत्याच्च प्राणावलम्बनं करोति। रूजाकराण्यग्निवायुगुणभूयिष्ठानि, विशेषतश्च तौ रूजाकारौ।"

(सु० शा० ६)

उक्त सूत्र में सद्यःप्राणहर मर्मों को आग्नेय कहा गया है। और प्रतिपादित किया है कि उक्त मर्म पर आघात होने से अग्निगुण क्षीण होने के कारण मनुष्य की शीघ्र मृत्यु हो जाती है। अग्नि का नाम वेदों में 'तनूनपात' अर्थात जिसके रहने से शरीर का नाश नहीं होता, कहा है। मानवशरीर के जीवन-मरण का द्योतक शरीर की प्रकृत उष्मा ही होती है। शरीर रूपी यंत्र का कार्य एक नियत उष्मा की वर्तमानता में ही प्रकृत रूप से होता रहता है। इस ऊष्मा के कमी बेशी होने पर शरीर का कार्य विकृत रूप में होने लगता है और तब हम शरीर को रूग्ण कहते हैं। यदि शरीर के किसी ऐसे अवयव पर ऐसा अभिघात हो कि शरीर की प्रकृत-क्रिया को चलाने वाली उष्मा नष्ट हो जाय तो शरीर का भी नाश हो जायगा। ये सद्यःप्राणहर मर्म शरीर के ऐसे ही स्थल हैं जिन पर आघात होने से शरीर के जीवनस्वरूप आग्नेय अंश उष्मा (Energy) का सर्वनाश हो जाता है जिससे प्राणी की सद्यः मृत्यु हो जाती है। इस का स्पष्टीकरण इन मर्मों के पृथक् पृथक् वर्णन में हो जायगा। इसी प्रकार कालान्तर प्राण-हर-मर्म को सौम्याग्नेय अर्थात् सोम और अग्नि दोनों के गुणों वाला कहा है। मानव शरीर रूपी यंत्र को सुनियंत्रित रखने के लिये उक्त दोनों गुणों की वर्त्तमानता अत्यावश्यक है। ये उभय गुण परस्पर एक दूसरे के नियामक हैं। अतः कालान्तर प्राणहर मर्मों पर आघात होने से एक के क्षीण होने पर दूसरे के क्रमशः क्षीण होने के कारण मानवशरीर के अन्दर प्राण कुछ अधिक काल तक टिका रहता है और प्राणधारियों के प्राण पखेरू देर से निकलते हैं। विशल्य प्राणहर-मर्म वायव्य है। यहां प्राणवायु का निवास रहता है। प्राणवायु की संस्थिति शरीर के अवयवों को प्राण प्रदान करती है। इसलिये इस स्थलपर आघात होने से जब तक घातक शल्य उस अवयव में पैठा रहता है उक्त प्राणवायु बाहर निकलने नहीं पाता अतः सशल्य प्राणी जीवित रहता है परन्तु शल्य के अलग हो जाने पर प्राणवायु के

निकलने का द्वार बन जाने से प्राणवायु के बाहर होते उद्धृत शल्य व्यक्ति के प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं। परन्तु यही शल्य यदि स्वयं पाक होने के बाद पूय के साथ निकलते हैं तो उस समय द्वार के पूय आदि से रुद्ध होने के कारण मनुष्य नहीं मरता। वैकल्यकर मर्म सौम्य है। सोम स्थिर और शैत्य गुण वाला होने से प्राणों को स्थिर रखता है परन्तु आहत स्थान में विकलता अवश्य होती है। रुजाकर मर्म अग्नि और वायु के गुणों से भूयिष्ठ होता है अतः वहाँ पर अभिघात होने से अत्यन्त पीड़ा होती है।। अग्नि और वायु दोनों ही वेदना को उत्पन्न करने वाले हैं। **'वाताद्दते नास्ति रुजा'** यह स्पष्ट है।

उपर्युक्त पांच प्रकार के मर्मों का पृथक् पृथक् वर्णन उक्त तथ्यों को और स्पष्ट कर देगा। कुछ आचार्य पीड़ा को भी पाञ्चभौतिक मानते हैं जैसे-**'पाञ्च-भौतिकीं च रुजामाहुरेके'**। कुछ आचार्य सद्यःप्राणहरत्वादि की उपपत्ति भिन्न ढंग से किये हैं जैसेः—

"केचिदाहुर्मांसादीनां पञ्चानामपि समस्तानां विवृद्धानां च (सम-वृद्धानां वा पाठः) समवायात् सद्यःप्राणहराणि, एकहीनानामल्पानां वा कालान्तरप्राणहराणि, द्विहीनानामल्पानां वा विशल्यप्राणहराणि, त्रिहीनानामल्पानां वा वैकल्यकराणि, एकस्मिन्नेव रुजाकराणि इति"

(सु० शा० ६)

परन्तु इसका खण्डन निम्न पद द्वारा अचार्य ने कर दिया है—जैसे-**'नैवं यतोऽस्थिमर्मस्वभिहतेषु शोणितागमनं भवति।"** अर्थात् कई आचार्य का कहना है कि मांसादि सम्पूर्ण सम प्रमाण में वर्धित हुई पांचों मर्म वस्तुओं के संयोग से मर्म 'सद्यःप्राणहर' होते हैं। मांस सिरा आदि में से एक हीन अथवा एकाल्प वृद्ध मांसादि के संयोग से कालान्तर प्राणहर होते हैं। मांसादि में दो न होने से विशल्य प्राणहर और तीन न होने से वैकल्यकर मर्म होते हैं। इसी प्रकार एक ही वस्तु में मर्म आश्रित होने पर रुजाकर होता है। परन्तु इस प्रकार वास्तविक स्थिति नहीं है क्योंकि अस्थिमर्म पर भी अभिघात होने से रक्त निकलता है। अतः यह उपपत्ति शुद्ध नहीं।

सद्यःप्राणहरत्वादि के उपपत्ति के पहले वर्णन में यह बताया गया है कि

प्रत्येक मर्म के शरीर में एक वस्तु अधिक और शेष वस्तुएँ कम होती हैं और अधिक वस्तुओं के अनुसार मर्म का नामकरण होता है। उक्त वर्णन में विवृद्ध शब्द मूल पाठ में आने से यह कहा जाता है कि पांचों ही पर्याप्त बढ़े हुए अर्थात् सम प्रमाण में बढ़े हुए जहाँ पर होते हैं वे सद्यःप्राणहर होते हैं; क्योंकि विवृद्ध के वदले समवृद्ध पाठ भी मिलता है यह पाठभेद अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि इससे उपयुक्त कल्पना स्पष्टतया प्रदर्शित हो जाती है। आगे चलकर **'एकहीनानामल्पानां वा'** ऐसा पाठ आता है। इसका अर्थ यह है कि मांसादि पाचों में से एक का अत्यन्ताभाव होना या अल्पता होना। अल्प का सम्वन्ध पांचों के साथ न होकर जिसका अत्यन्ताभाव हो सकता है उसी के साथ होता है। 'नैवं' शब्द का अभिप्राय यह है कि अन्य आचार्यों की मर्मों के पञ्चविधत्व के सम्वन्ध में एकोत्तर हीनत्व की जो कल्पना है वह ठीक नहीं है। इसके लिये प्रमाण देते हैं कि **'अस्थिमर्मसु इत्यादि'**। यह अस्थि शब्द उपलक्षण मात्र है इसमें अन्य मर्मों का भी समावेश हो जाता है क्योंकि आगे के श्लोक में यह वताया जा रहा है कि चतुर्विध सिरायें सव प्रकार के मर्मों में होती हैं। इसलिये अस्थिमर्म पर भी चोट लगने से रक्तस्राव होता है, अन्य मर्मों पर आघात होने से रक्तस्राव तो होता ही है। अतः संक्षेप में शरीर के मर्म एकोत्तर हीन न हो कर पांचों के समवाय से बना होता है। केवल किसी में एक की दूसरे में अन्य की अधिकता होती है जिससे उनका नामकरण होता है।

उपर्युक्त सूत्रों में मर्मों के सद्यःप्राणहरत्वादि परिणाम के सम्वन्ध में प्राचीन कल्पना के अनुसार उनकी उपपत्ति वतलाई गई है। आधुनिक दृष्टि से ये परिणाम कैसे हो सकते हैं इस पर कुछ विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। अस्तु—

सद्यःप्राणहरत्व—यद्यपि शरीर में अनेक महत्व के अङ्ग हैं और प्रत्येक अङ्ग का विशेष प्रयोजन भी है तथापि जीवित रहने की दृष्टि से हृदय, मस्तिष्क और फुफ्फुस ये तीन अङ्ग नितान्त आवश्यक तथा सर्वाधिक महत्व के माने गए हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने इसे 'जीवन का त्रिदण्ड' (Tripoid of life) कहा है। आयुर्वेद में भी त्रिदण्ड की कल्पना है और इन के लिये 'त्रिमर्म'

शब्द का प्रयोग हुआ है। भेद इतना ही है कि फेफड़ों को हृदय के अन्दर ही समाविष्ट कर तीसरा मर्म वस्ति का नाम आया है। जैसेः—

"स्कन्धाश्रितेभ्योऽपि हृद्वस्तिशिरांसि (गरीयांसि) तन्मूलाच्छरीरस्य" (चरक)

"सप्तोत्तरं मर्मशतं यदुक्तं शरीरसंख्यामधिकृत्य तेषु।
मर्माणि वस्ति हृदयं शिरश्च प्रधानभूतानृषयो वदन्ति॥
प्राणाश्रयान् तानपि पीडयन्तो वातादयोऽसूनपि पीडयन्ति।"

(चरक० सि० ९)

इस पर टीका करते हुए चक्रपाणिदत्त ने लिखा है कि—**"प्राणाश्रयत्वमपि यथा हृदयादीनां न तथा शंखादीनाम्।"**

इस का अभिप्राय यह है कि यद्यपि सद्यःप्राणहर मर्मों की संख्या १९ वतलायी गई है तथापि हृदय-वस्ति और शिर ये तीन मर्म शेष सद्यःप्राणहर मर्मों की अपेक्षा विशेष महत्व के हैं, क्योंकि इन पर आघात होने से अतिशीघ्र प्राण नष्ट हो जाता है। चक्रपाणिदत्त ने—**'अन्ये तु शंखादिप्राणाश्रयाणां हृद्वस्तिष्वेव सामीप्यादन्तर्भावं दर्शयन्ति'** इस पद के द्वारा इसे और स्पष्ट कर दिया है। प्राणहरण करने का धर्म केवल इन उन्नीस मर्मों में ही सिमित नहीं हुआ है, वरन् हर एक मर्म पर विशेष आघात होने से प्राण का नाश हो सकता है। इसलिये आगे चल कर कहा है कि—**"एवं परं परमपि मर्मातिविद्धयादिकारणवशात् पूर्वस्य पूर्वस्य कर्म करोति।" अत एव तेषु इत्यादिना क्षिप्राणि कदाचिदाशु मारयन्तीति अग्रे वक्ष्यति।"**

(डल्हण)

अर्थात् बाद वाले मर्मों पर भी यदि अधिक आघात हो तो उससे उसके पूर्व मर्म का परिणाम हो सकता है। तात्पर्य यह कि कालान्तर प्राणहर मर्म पर अधिक आघात से सद्यःप्राणहर का भी परिणाम सभव है इत्यादि। परन्तु इन मर्मों पर भी आघात होने से मृत्यु का कारण उक्त त्रिमर्म ही होते हैं जैसेः—

'तेषां त्रयाणामन्यतमस्यापि भेदादाश्वेव शरीरभेदः स्याद्। आश्रयनाशात् आश्रितस्यापि विनाशः; तदुपतापात्तु घोरतरव्याधि प्रदुर्भावः। तस्मादेतानि विशेषेण रक्ष्याणि बाह्याभिघाताद्वातादिभ्यश्च।"

(च० सि० ९)

पाश्चात्य ग्रन्थों में भी इसका समर्थन मिलता है जैसे—

"Life and health depends upon the proper actions of the heart, lungs & brain. This has been called the 'Tripoid of life' Bichat (1998) Considered that death might arise from a failure of each of these."

(Medical jurisprudence)

हृदय, मस्तिष्क, फुफ्फुस में से फुफ्फुस की गणना मर्मों में नहीं हुई है। इसका कारण यह है कि फुफ्फुस का ग्रहण हृदय से ही हो गया है। हृदय से फुफ्फुस युक्त हृदय का ग्रहण हुआ है। क्योंकि सुश्रुत सूत्रस्थान २७ वें अध्याय में—**"बाहुरज्जुलता पाशशल्ये तु कण्ठपीडनाद्वायुः प्रकुपितः श्लेष्माणं कोपयित्वा स्रोतोनिरुणद्धि लालाश्रावं फेनागमनं संज्ञानाशं चापादयति।"** इस सूत्र में इस का संकेत मिलता है।

'हृदय' सद्यः प्राणहरत्व की दृष्टि से मस्तिष्क की अपेक्षा भी अधिक महत्व का है। कोई प्राणी या मनुष्य सजीव है या निर्जीव है, इस का निर्णय हृद्गति से ही किया जाता है। हृदय की गति के वन्द हो जाने से एक क्षण पहले बात करता हुआ प्राणी—दूसरे क्षण में निर्जीव हो जाता है। आयुर्वेद में इसी लिये हृदय का सर्वाधिक महत्व प्रतिपादित किया गया है और उसको ही चेतना का निवास स्थान माना गया है।

"तद् हृदयं विशेषेण चेतनास्थानम्" (सु० शा० ४) चेतना का विशिष्ट स्थान हृदय है अतः तात्कालिक मृत्यु का कारण सर्वदा हृद्भेद (Heart failure) हुआ करता है। यह हृद्भेद दो कारणों से मुख्यतः हुआ करता है। प्रथम हृद्विकार के कारण तथा दूसरा स्वस्थ हृदय में प्रत्यावर्तन जनित हृद्गत्यवरोध (Reflex inhibition of the heart) से। यदि

किसी का हृदय पुराने विकार से (Aortic regurgitation अथवा fatty digenaration) दुर्बल हो गया हो तो अल्पाघात से भी वह विदीर्ण (Rupture) हो सकता है और तत्काल मृत्यु हो सकती है। जब हृदय स्वस्थ रहता है तो भी किसी मर्मस्थान पर आघात होने से सांवेदनिक नाड़ी सूत्रों द्वारा, उसका परिणाम मस्तिष्कगत हृद्केन्द्र (Cardiac Centre) पर होने से हृदय का कार्य वन्द हो जाता है जिससे मृत्यु हो जाती है। इसको प्रत्यावर्त्तनजन्य हृद्भेद कहते हैं। इससे स्तब्धता भी हो सकती है। शंखप्रदेश पर या नाभिप्रदेश पर आघात होने से कई बार लोगों की मृत्यु इसी कारण से हुआ करती है। प्रत्यावर्त्तन जन्य हृद्भेद में चार अवस्थाएँ सहायक बनती हैं।

(१) हृदय की विकृति।

(२) मानसिक स्थिति—चिन्ता, शोक, आनन्द, दुःख, भीति इत्यादि विकारों से जब मन और मस्तिष्क अस्थिर रहता है, उस समय शरीर की सांवेदनिक नाड़ियों (Sensory nerves) या उसके क्षेत्र पर कहीं भी थोड़े से भी अभिघात होने से, उसका कुछ का कुछ परिणाम हो कर मृत्यु हो सकती है।

(३) आमाशय की पूर्णता। आमाशय हृदय का पासवर्त्ती अङ्ग है अतः अतिभोजन से हृदय पर उसके अधिक भर जाने से दबाव पड़ता है जिससे उसके सङ्कोच प्रसार में कुछ कठिनाई हो जाती है। परिणाम यह होता है कि हृदय को अपने अन्दर स्थित रक्त के विक्षेप के लिये अधिकश्रम करना पड़ता है, जिससे हृदय की धड़कन, अनियमितता आदि हृदय विकार के लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। आयुर्वेद में मात्रावत् भोजन के लक्षण का 'हृदयावाधः' तथा 'हृद-स्थानानवरोधः' शब्द उसीका संकेत करते हैं। अति भोजन के पश्चात् आमाशय या अन्य प्रदेश में आघात होने से हृदय वन्द होने की संभावना अधिक होती है।

(४) लसिका धातु वृद्धि की अवस्था (Status lymphaticus) शरीर में जहाँ जहाँ लसिका धातु जैसे गलग्रंथि, प्लीहा, थायमस इत्यादि में होती है वहाँ वहाँ उनकी वृद्धि हो जाती है। इस स्थिति का ज्ञान प्रायः मृत्यु पश्चात् मरणोत्तर परीक्षा से हुआ करता है। इस स्थिति का महत्व इस लिये है कि कनपटी पर थप्पड़ लगने से, थोड़ासा आघातसे, डर से, या क्लोरोफार्म

से, ऐसे लोगों की तुरन्त मृत्यु होती है। संक्षेप में तत्काल मृत्यु का कारण हृद्भेद हुआ करता है। और वह हृद्भेद प्रत्यक्ष या प्रत्यावर्त्तन जनित हुआ करता है।

आयुर्वेद में सद्यःप्राणहर काल सात दिन तक का निर्देश किया गया है। अतः जिनकी तत्काल मृत्यु नहीं होती उनकी सात दिनों तक मृत्यु हो सकती है। कुछ काल बाद मृत्यु होने के मुख्य तीन कारण होते हैं (१) मूर्च्छा (Syncope) (२) स्तब्धता (Shock), (३) सन्यास (Coma)।

मूर्च्छा—यह अवस्था मस्तिष्क में रक्त की कमी होने से उत्पन्न होती है। इसके भी तीन कारण होते हैं। मर्माघात की दृष्टि से सबसे अधिक महत्व का कारण रक्तस्रावाधिक्य है। यह रक्तस्राव धमनी या सिरा फटने से होता है। यह शरीर के बहिः भाग में तथा आभ्यन्तर भाग में, दोनों स्थान पर हो सकता है। सिरा मर्मों की प्राणघातकता इसी कारण प्रतिपादित है। दूसरा कारण रक्तवाहिनी नियंत्रणास्थैर्य (Vaso-motor instability) है। इससे उदरप्रदेश में रक्तवाहिनियाँ विस्फारित होजाती है जिससे वहा रक्त अधिक राशि में एकत्र हो जाता है। परिणाम स्वरूप मस्तिष्क में रक्त की कमी होने से मूर्च्छा होती है। नाभि प्रदेश में आघात होने से भी यह अवस्था उत्पन्न हो सकती है। तीसरा कारण हृदय की दुर्बलता है। इसका विचार पहले किया जा चुका है। मर्माभिघात की दृष्टि से यह कारण विशेष महत्व नहीं रखता।

सन्यास—यह विकार मस्तिष्क का है। यह शिर के ऊपर (शृङ्गाटक, अधिपति, और शंख) मर्म पर आघात होने से मस्तिष्क के भीतर का मस्तिष्कावरण के भीतर और मस्तिष्क के बाहर भाग में रक्तस्राव होने से होता है। आघातजन्य मस्तिष्क संक्षोभ (Cerebral Concussion) से या खोपड़ी की अस्थि के अवनत भंग (Depressed fracture) होने से यह अवस्था उत्पन्न होती है। ये अवस्थाएँ आगन्तुक कारण जन्य होती हैं।

स्तब्धता—मर्माभिघातजन्य तीव्र पीड़ा से शरीर के जीवनीय मर्मों में स्तब्धता हो जाती है। शरीर के जीवनीय कार्यों (Vital action) के ह्रास

होने से जीवन का भी ह्रास हो जाता है। जीवन के अभाव में शरीर के अवयव अपने कार्य को बन्द कर देते हैं और मनुष्य की भी मृत्यु हो जाती है।

संक्षेप में मर्मों का सद्यःप्राणहरत्व हृदय के एकाएक जवाब देने से, स्तब्धता से, मूर्च्छा या सन्यास से होता है।

कालान्तर प्राणहरत्व—कालान्तर प्राणहर मर्मों पर आघात होने से प्राण का नाश निम्न प्रकार से होता है:—

(१) शनैः शनैः रक्तस्राव से—अल्पकाल में अधिक रक्तस्राव होने से सद्यः मृत्यु होती है परन्तु थोड़ा थोड़ा रक्त अधिक काल तक निकलते रहने से तीव्र रक्तक्षय उत्पन्न होता है और उससे रोगी की मृत्यु कालान्तर में होती है। रक्त का स्राव निरन्तर, अन्तरित और गुप्त तीन प्रकार का होता है।

(२) जीवाणुओं का संक्रमण या उपसर्ग—इससे मर्म स्थान पर अभिघात जन्य व्रण उत्पन्न होने के कारण कुछ काल बाद उसमें जीवाणुओं का संक्रमण या उपसर्ग हो जाता है जिससे जीवाणुमयता (Septicimia) विसर्प (Erysepelus) धनुर्वात (Tetanus) इत्यादि विकार उत्पन्न होकर कुछ काल बाद रोगी की मृत्यु हो जाती है।

विशल्यघ्न—विशल्य अर्थात् शल्य रहित होने पर ये मर्म मारक होते हैं। ये मर्म शिरः **करोटि** में स्थित हैं। यहां पर आघात होने से जब शल्य प्रविष्ट हो जाता है तब शल्य के उस स्थान पर स्थित रहने से स्थान विद्ध होने पर भी रक्तस्राव नहीं होता तथा बाह्य वायु का भी प्रवेश नहीं होता अतः सशल्य जीता है, परन्तु किसी प्रकार वह शल्य वहाँ पर स्थित नहीं रहता या निकाल दिया जाता है तो भयंकर रक्तस्राव से तथा बाह्य वायु के प्रवेश से रोगी की मृत्यु हो जाती है। यदि वही शल्य कुछ काल बाद व्रण में पाक उत्पन्न होने से पूय आदि के साथ बाहर आता है तो विद्धस्थान शोथादि से पूर्ण रहने के कारण रक्त का स्राव अधिक नहीं होता तो रोगी के बच जाने की सम्भावना रहती है।

वैकल्यकर—अस्थि, संधि, स्नायु सिरा और मांस इन धातुओं के टूटने से उस अंग में सदा के लिये वैकल्य हो सकता है। हड्डी टूटने पर उससे कमजोरी

आ जायगी, संधि से संधि भंग या संधि विश्लेष (Fracture or dislocation) हो जायगा; स्नायु (Legaments) के टूटने से मोंच (Sprain) पैदा होगा या विशिष्ट पेशी के हलचल में रुकावट होगी, मांस के टूटने से स्थायी संकोच (Contracture) और संसक्ति (Adhesion) होकर पेशियों की गति में कठिनता हो जायगी।

V **रुजाकर मर्म**—इसका नाम ही अपना परिचय दे देता है अतः इसके सम्बन्ध में विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं। मर्म के ऊपर आघात होने से अगर कुछ भी न हो तो कम से कम पीड़ा तो अवश्य होगी। इन स्थानों पर सांवेदनिक नाड़ियों का वितान अधिक होने से वहाँ पर आघात से पीड़ा अधिक होती है। जब तक यह पीड़ा अपने स्थान में सिमित रहती है तब तक इसको केवल पीड़ा या रूजा कहते हैं। पर कई बार पीड़ा का परिणाम सार्वदेहिक होता है। उस समय प्रत्यावर्त्तन क्रिया से हृदय के कार्य में कुछ अवरोध उत्पन्न होकर मनुष्य स्तब्ध हो जाता है। इस अवस्था को स्तब्धता (Shock) कहते हैं। इस में बेहोशी, अवसन्नता (Prostration) नाड़ी और हृदय क्षीण, अनियमित तथा शीघ्रगामी, श्वास उथली और घर्घर युक्त, शरीर ठंढा इत्यादि लक्षण उत्पन्न होकर मृत्यु भी हो सकती है। स्तब्धता प्राथमिक (Primary) और द्वितीय (Secondery) दो प्रकार की होती है। स्तब्धता की उत्पत्ति में चिन्ता, शोक भीति, इत्यादि मानसिक विकार सहायक होते हैं। आघात के समय यदि मस्तिष्क इन विकारों से अस्थिर हो तो स्तब्धता शीघ्र उत्पन्न होती है।

पञ्चविध मर्मों के आघात के लक्षण—सद्यःप्राणहर मर्मों पर आघात होने से इन्द्रियों की अपने अपने विषयों को ग्रहण करने में असमर्थता, मन और बुद्धि के कार्यों में वैपरीत्य और तरह तरह की तीव्र वेदनाएँ (ये लक्षण) होते हैं। कालान्तर प्राणहर के अभिघात होने पर धातुओं का क्रमशः क्षय होता है और बाद में धातु क्षय जनित वेदनाओं के कारण मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। वैकल्यकर मर्म पर अभिघात होने से वैद्य की कुशलता से उस अङ्ग का कर्म क्षय मात्र होकर विकलाङ्ग हो जाता है। विशल्यघ्न मर्म के आघात का स्पष्टीकरण पहले किया जा चुका है। रुजाकर मर्म के अभिघात से नाना प्रकार की पीड़ा

होती हैं और यदि किसी अकुशल वैद्य के हाथ उसकी चिकित्सा रही तो आहत स्थान की विकलता भी हो सकती है।

मर्माभिघात के सामान्य लक्षण:—

"देहप्रसुप्तिर्गुरुता संमोहः शीतकामिता।
स्वेदो मूर्च्छा वमिः श्वासो मर्मविद्धस्य लक्षणम्॥"

(अ० सं० शा० ७)

"भ्रमः प्रलापः पतनं प्रमोहो, विचेष्टनं संतपनोष्णता च।
स्रस्ताङ्गता मूर्च्छनमूर्ध्ववातस्तीव्रा रुजो वातकृताश्च तास्ताः॥
मांसोदकाभं रुधिरञ्च गच्छेत् सर्वेन्द्रियार्थोपरमस्तथैव।
दशार्धसंख्येस्वपि हि क्षतेषु सामान्यतो मर्मसु लिङ्गमुक्तम्॥"

(सु० सू० २५)

सब प्रकार के मर्मों के अभिघात होने पर निम्न लक्षण पाये जाते हैं:—

अभिहत स्थान पर शोथ, शून्यता, रोगी का बेहोस हो जाना, शीत (जलादि) की इच्छा, स्वेद, मूर्च्छा, वमन, दम का फूलना, चक्कर, प्रलाप, अभिहत, अङ्गों का पतन, विकृतचेष्टा, संलपन, अभिहत स्थान का उष्ण हो जाना, शिथिलाङ्गता, ऊर्ध्ववात, वायुकृत तीव्र वेदना, मांसोदक सदृश रक्त का आना, सभी इन्द्रियों की कार्याक्षमता आदि लक्षण पांचों प्रकार के मर्मों के आहत होने पर सामान्यतः होते हैं।

पांच प्रकार के मर्मों के पृथक् पृथक् नाम:— (सुखस्मरणार्थ)

"शृङ्गाटकान्यधिपतिः शंखौ कण्ठसिरागुदम्।
हृदयं बस्तिनाभी च घ्नन्ति सद्यो हतानि तु॥
वक्षो मर्माणि सीमन्ततलक्षिप्रेन्द्रवस्तयः।
कटीकतरुणे सन्धीपार्श्वजौ बृहती च या॥
नितम्बाविति चैतानि कालान्तरहराणि तु।
उत्क्षेपौ स्थपनी चैव विशल्यघ्नानि निर्दिशेत्॥
लोहिताक्षाणि जानूर्वी कूर्चौ विटपकूर्पराः।
कुकुन्दरे कक्षधरे विधुरे सकृकाटिके॥

अंसांसफलकापाङ्गा नीले मन्ये फणौ तथा।
वैकल्यकराण्याहुरावर्त्तौ द्वौ तथैव च॥
गुल्फौ द्वौ मणिबंधौ द्वौ द्वे द्वे कूर्चशिरांसि च।
रूजाकराणि जानीयादष्टावेतानि बुद्धिमान्॥
क्षिप्राणि विद्धमात्राणि घ्नन्ति कालान्तरेण च।
(सु० शा० ६

दूसरा अध्याय

(शाखाओं में स्थित मर्मों का वर्णन)

प्रत्येक शाखा में ११ मर्म होते हैं। शाखाएँ चार हैं। इस प्रकार चा[रों] शाखाओं के मर्मों की संख्या ११ × ४ = ४४ हैं। इन मर्मों के नाम निम्न प्रकार हैं

"तेषामेकादशैकस्मिन् सक्थ्नि भवन्ति। एतेनेतरसक्थि बाहू [च] व्याख्यातौ। तत्र सक्थिमर्माणि क्षिप्र-तलहृदय-कूर्च-कूर्चशिरो-गुल्फे-न्द्रवस्ति-जान्वाण्युर्वीलोहिताक्षाणि विटपञ्चेति। एतेनेतरत् सक्थि व्याख्यातम्।" (सु० शा० ६

सक्थिके मर्मोंके नाम और संख्या।			बाहुके मर्मोंके नाम और संख्या।		
१	क्षिप्रमर्म ...	२	१	क्षिप्रमर्म ...	२
२	तलहृदय ...	२	२	तलहृदय ...	२
३	कूर्च ...	२	३	कूर्च ...	२
४	कूर्चशिर ...	२	४	कूर्चशिर ...	२
५	गुल्फ ...	२	५	मणिबंध ...	२
६	इन्द्रवस्ति ...	२	६	इन्द्रवस्ति ...	२
७	जानु ...	२	७	कूर्पर ...	२
८	आणी ...	२	८	आणी ...	२
९	उर्वी ...	२	९	बाह्वी ...	२
१०	लोहिताक्ष ...	२	१०	लोहिताक्ष ...	२
११	विटप ...	२	११	कक्षधर ...	२
	कुल	२२		कुल	२२

नोट—ऊर्ध्व शाखा और अधः शाखा के मर्मों के नाम प्रायः समान है। केवल ऊर्ध्व शाखा में अधः शाखा के गुल्फ, जानु, उर्वी और विटप के स्थान पर मणिबंध, कूर्पर, वाह्वी और कक्षधर हो गया है।

मध्यशरीर के मर्मों का वर्णनः—

"उदरोरसोर्द्वादश। चतुर्दश पृष्ठोदरोरसोस्तु गुद-वस्ति-नाभि- हृदय-स्तनमूल-स्तनरोहिता-पलापान्यपस्तम्भौ चेति। पृष्ठमर्माणि तु कटीकतरुण-कुकुन्दर-नितम्ब-पार्श्वसंधिवृहत्यंसफलकान्यंसौ चेति"।

(सु. शा. ६)

उदर के मर्मों के नाम और संख्या।

१	गुद	...	१
२	वस्ति	...	१
३	नाभि	...	१
		कुल	३

छाती के मर्मों के नाम और संख्या।

१	हृदय	...	१
२	स्तनमूल	...	२
३	स्तन रोहित	...	२
४	अपलाप	...	२
५	अपस्तम्भ	...	२
		कुल	९

पृष्ठ के मर्मों की संख्या।

१	कटीक तरुण	...	२
२	कुकुन्दर	...	२
३	नितम्ब	...	२
४	पार्श्वसंधि	...	२
५	बृहति	...	२
६	अंशफलक	...	२
८	अंश	...	२
		कुल	१४

इस प्रकार—

उदर के मर्म	...	३
छाती के मर्म	...	६
पृष्ठ के मर्म	...	१४
	कुल योग	२६

इस प्रकार मध्य शरीर के कुल मर्मों की संख्या २६ है।

जत्रूर्ध्व मर्मों के वर्णन—

मानवशरीर में ग्रीवा के ऊपर ३७ मर्म हैं जिनके नाम और संख्या निम्न प्रकार हैं :—

"ग्रीवां प्रत्यूर्ध्वं सप्तत्रिंशत्। जत्रूर्ध्वं मर्माणि चतस्रो धमन्योऽष्टौ मातृका, द्वे कृकाटिके, द्वे विधुरे, द्वे फणे, द्वावपाङ्गौ, द्वावावर्त्तौ, द्वावुत्क्षेपौ, द्वौ शंखौ, एका स्थपनी, पञ्च सीमन्ताश्चत्वारि शृङ्गाटकानि एकोऽधिपतिरिति।" (सु० शा० ६)

ग्रीवा के ऊपर भाग में स्थित मर्मों के नाम और संख्या:—

१	धमनियां	४
२	मातृकाएं	८
३	कृकाटिका	२
४	विधुर	२
५	फण	२
६	अपांग	२
७	आवर्त	२
८	उत्क्षेप	२
९	शंख	२
१०	स्थपनी	१
११	सीमन्त	५
१२	शृंगाटक	४
१३	अधिपति	१
		कुल ३७

इस प्रकार मानव शरीर के शाखाओं के	४४	मर्म
,, मध्यशरीर के	२६	मर्म
,, ग्रीवा के ऊपर भाग के	३७	मर्म
कुल मिल कर	१०७	मर्म हैं

मांस मर्मों के नाम संख्या और स्थानः—

	नाम		संख्या	शरीराङ्ग में स्थान
१	तल हृदय	...	४	शाखाओं में स्थित है।
२	इन्द्रवस्ति	...	४	,,
३	गुद	...	१	उदर प्रदेशस्थ मर्म हैं।
४	स्तनरोहित	...	२	उरःप्रदेशस्थ मर्म हैं।
		कुल	११	

इस प्रकार मांस मर्मों की कुल संख्या ११ है।

सिरा मर्मों के नाम, संख्या और स्थानः—

	नाम		संख्या	शरीराङ्ग में स्थान
१	नील धमनी	...	२	जत्रूर्ध्व प्रदेश में स्थित है।
२	मन्या धमनी	...	२	,,
३	मातृकाएँ	...	८	,,
४	शृङ्गाटक	...	४	,,
५	अपांग	...	२	,,
६	स्थपनी	...	१	,,
७	फण	...	२	,,
८	स्तनमूल	...	२	उरःप्रदेश में स्थित है।
९	अपलाप	...	२	,,
१०	अपस्तम्भ	...	२	,,
११	हृदय	...	१	,,
१२	नाभि	...	१	उदर प्रदेश में स्थित है।
१३	पार्श्वसंधि	...	२	पृष्ठप्रदेश में स्थित है।
१४	बृहती	...	२	,,
१५	लोहिताक्ष	...	४	शाखा में स्थित है।
१६	उर्वी और वाह्वी		४	,,
		कुल	४१	

इस प्रकार सिरा मर्मों की संख्या ४१ है।

स्नायु मर्मों के नाम संख्या और स्थान :—

	नाम		संख्या	शरीराङ्गो में स्थान
१	आणी	...	४	शाखाओं में स्थित है ।
२	विटप	...	२	,,
३	कक्षधर	...	२	,,
४	कूर्च	...	४	,,
५	कूर्चशिर	...	४	,,
६	वस्ति	...	१	उदर प्रदेश में स्थित है ।
७	क्षिप्र	...	४	शाखाओं में स्थित है ।
८	अंश	...	२	पृष्ठप्रदेश में स्थित है ।
९	विधुर	...	२	जत्रूर्ध्वप्रदेश में स्थित है ।
१०	उत्क्षेप	...	२	,,
		कुल	२७	

इस प्रकार कुल स्नायु मर्मों की संख्या २७ है ।

अस्थि मर्मों के नाम, संख्या और स्थान :—

	नाम		संख्या	स्थान
१	कटीक तरुण	...	२	पृष्ठ प्रदेश में स्थित है ।
२	नितम्ब	...	२	,,
३	अंशफलक	...	२	,,
४	शंख	...	२	जत्रूर्ध्व प्रदेश में स्थित है ।
		कुल	८	

अस्थिमर्मों की कुल संख्या ८ है ।

नोट—मर्मों का नामकरण 'उत्कर्षेण व्यपदेश' के सिद्धान्त से किया गया है । अतः इनकी रचना में जिस शरीर वस्तु की प्रधानता है उसी से इन्हें संज्ञित किया गया है ।

संधि के मर्मों के नाम, संख्या और स्थान :—

	नाम	संख्या	स्थान
१	जानु	... २	शाखाओं में स्थित है।
२	कूर्पर	... २	,,
३	सीमन्त	... ५	जत्रूर्ध्व प्रदेश में स्थित है।
४	अधिपति	... १	,,
५	गुल्फ	... २	शाखाओं में स्थित है।
६	मणिबध	... २	,,
७	कुकुन्दर	... २	,,
८	आवर्त्त	... २	जत्रूर्ध्व प्रदेश में स्थित है।
९	कृकाटिका	... २	,,
	कुल	२०	

इस प्रकार कुल संधि मर्मों की संख्या २० है।

रचना के अनुसार उक्त पांच प्रकार के मर्मों की कुल संख्या १०७ दर्शायी गई है जो संक्षेप में निम्न प्रकार से है :—

मांसमर्म	११
सिरामर्म	४१
स्नायुमर्म	२७
अस्थिमर्म	८
संधिमर्म	२०
सर्व योग	१०७

मर्मों की रचना में विशेषताः—

"चतुर्विधा यास्तु शिराः शरीरे प्रायेण ता मर्मसु सन्निविष्टाः।
स्नाय्वस्थिमांसानि तथैव सन्धीन् सन्तर्प्य देहं प्रतिपालयन्ति॥
ततः क्षते मर्मणि ताः प्रवृद्धः समन्ततो वायुरभिस्तृणोति।
विवर्द्धमानस्तु स मातरिश्वा रुजः सुतीव्राः प्रतनोति काये॥

**रुजाभिभूतन्तु पुनः शरीरं प्रलीयते नश्यति चास्य संज्ञा।
अतो हि शल्यं विनिहर्त्तुमिच्छन् मर्माणि यत्नेन परीक्ष्य कर्षेत् ॥"**

(सु० शा० ६)

शरीर में जो चार प्रकार (वातरक्तवाही, पित्तरक्तवाही, कफरक्तवाही और समदोषरक्तवाही) की सिराएँ होती हैं वे प्रायः मर्मस्थानों में सन्निविष्ट रहती हैं, और स्नायु, अस्थि, मांस तथा संधियों को संतर्पण कर शरीर का पालन करती हैं। अतः मर्म पर चोट लगने से वायु प्रवृद्ध होकर उन सिराओं को चारो ओर से आच्छादित कर लेती है, और इस प्रकार बढ़ती हुई वायु शरीर में तीव्र पीड़ा को फैलाती है। तब तीव्र वेदना से पीड़ित शरीर नष्ट होने लगता है और उनकी चेतना भी नष्ट हो जाती है। इसलिये शल्य निकालने वाले वैद्य शल्य समीपवर्त्ती स्थान के मर्मों का यत्न पूर्वक परीक्षा करके पश्चात् शल्य को निकालें।

वक्तव्य—पिछले अध्याय में मर्मों की एकोत्तर हीनत्व की कल्पना का खण्डन, अस्थिमर्माभिघात के शोणितागमन के उदाहरण से किया गया है। यहां (उपर्युक्त वर्णन में) अस्थिमर्मों में रक्तोपस्थिति को स्पष्ट किया गया है। वातरक्तवह, पित्तरक्तवह, कफरक्तवह और समदोषरक्तवह ये जो चार प्रकार की रक्तवाहिनियां (सिराएँ) हैं वे शरीर के सम्पूर्ण मर्म में सन्निविष्ट हैं, अतः अस्थिमर्म में भी ये सिराएँ होती हैं और आघात होने से उनसे रक्त निकलता है। इसके पश्चात् मर्माघात होने से पीड़ा क्यों और कैसे होती है तथा उस उग्र पीड़ा से मृत्यु तक हो सकती है यह दर्शाया गया है। आधुनिक परिभाषा के अनुसार इस वर्णन में स्तब्धता (Shock) से होने वाली दुर्घटना का वर्णन प्रतीत होता है। स्तब्धता—आघात, क्षत, शस्त्रकर्म तथा विष, इन कारणों से उत्पन्न होती है और कारणों के अनुसार आघातजन्य (Traumatic) क्षतजन्य (Wound), शास्त्रकर्मजन्य (Surgical), विषजन्य (Toxic), इत्यादि उनके प्रकार किये गये हैं। स्तब्धता अधिकतर आघात या क्षत से ही उत्पन्न होती है। आघात या क्षत से प्रायः तीव्र पीड़ा (Pain) होती है और इसके सार्वदेहिक प्रभाव से शरीर के महत्व के कार्य (Vital functions)

उत्तरोत्तर क्षीण होते जाते हैं और अन्त में मृत्यु हो जाती है। स्तब्धता उत्पन्न करने में तीव्र पीड़ा एक महत्व का सहायक कारण होता है। संक्षेप में आघात, तज्जन्य पीड़ा, पीड़ा के कारण शरीर के महत्व के कार्य का उत्तरोत्तर क्षीण होना और अन्त में मृत्यु यह स्तब्धताजन्य मृत्यु का क्रम आधुनिक सम्प्राप्ति से सर्वथा साम्य रखता है—देखिये—

"Shock is a condition following surgical operations, trauma, wounds, intoxications or infections, in which a progressive failure of body functions, leading more or less rapidly to death, occurs" (Physiology in health and disease by Carl. J. W. Eggier) "Pain is a factor in the productions of shock"

(Howbert Pathology)

मर्माघातजन्य मृत्यु की जो घटना वर्णित की गई है उसका क्रम शब्दशः आधुनिक क्रम के साथ मिलता है। उपर्युक्त वर्णन वाले श्लोक की टीका में 'उल्हणाचार्य' लिखते हैं—"**इदानीं यत्रैकदेशजेऽपि प्रहारे मर्मविद्धस्य क्रमेण सकलशरीरे वातादिदोषव्याप्त्या रुजावेगेन चेतनाधातोर्वियोगस्तथा दर्शयन्नाह। शरीरं प्रलीयते प्रलयं गच्छति शरीरयन्त्रं विघटयतीत्यर्थः। तस्मिन् पाञ्चभौतिके शरीरे प्रलीने संज्ञाषष्ठश्चेनाधातुरपि नश्यति॥**" प्रलय शब्द शरीर की उत्तरोत्तर क्षीणता का बोधक होता है, एकाएक क्षीणता का नहीं। अस्थि मर्माघात से रक्त निकलता है यह वर्णन उपलक्षण मात्र है। इसका स्पष्ट समर्थन सुश्रुत के अगले सूत्र '**एतेन शेषं व्याख्यातम्**' से होता है। इसका अभिप्राय यह है कि यद्यपि उपर्युक्त तीन श्लोकों का व्याख्यान अस्थिमर्माघात से शोणितागमन के निमित्त किया गया है तथापि यही व्याख्यान शेष मांसादि मर्मों के संबन्ध में भी हो सकता है। संक्षेप में मांसादि मर्मों पर आघात होने से भी रक्त निकलता है, पीड़ा होती है, शरीर प्रलीन होता है और मृत्यु तक हो सकती है।

मर्माभिघात से उपदिष्ट लक्षणों से भिन्न लक्षण और परिणाम:—

पिछले अध्याय में अभिघात या विद्ध के परिणाम के अनुसार मर्मों के सद्यः-प्राणहरत्वादि पांच प्रकारों का निर्देश किया गया है। यहां यह बतलाया जायगा कि मर्माघात का परिणाम आघात के औचित्य के साथ २ बदलता रहता है। यदि आघात जोर या उचित स्थान पर न हो तो एक प्रकार के मर्म से दूसरे प्रकार के मर्माघात का परिणाम होने लगता है जैसे:—

"तत्र सद्यःप्राणहरमन्ते विद्धं कालान्तरेण मारयति। कालान्तर-प्राणहरमन्ते विद्धं वैकल्यमापादयति। विशल्यप्राणहरमन्ते विद्धं कालान्तरेण क्लेशयति रुजाञ्च करोति। रुजाकरमप्रतीवेदनं भवति।"

(सु० शा० ६)

अन्त में (घेरे के बाहर परन्तु समीप में) विद्ध हुआ सद्यःप्राणहर मर्म कालान्तर से घातक होता है। और इसी प्रकार अन्त में (समीप में) विद्ध हुआ कालान्तरप्राणहर मर्म विकलता उत्पन्न करता है तथा विशल्यघ्न मर्म भी अन्त में विद्ध होने पर वैकल्य उत्पन्न करता है। इसी प्रकार अन्त में विद्ध हुआ वैकल्यकर मर्म अधिक काल तक कष्ट देता है और अन्त में (समीप में) विद्ध हुआ रुजाकर मर्म अधिक पीड़ा नहीं करता।

'अन्त' शब्द से निर्दिष्ट स्थान का समीपवर्त्ती स्थान भी अभिप्रेत होता है। इस औचित्य पुष्टि के लिए निम्न उदाहरण दिये जा सकते हैं:—

"पौषमासस्य रोहिण्यामष्टकायामथाऽपि वा।
जलान्ते छन्दसां कुर्यादुत्सर्गं विधिवद्बहिः॥" (याज्ञवल्क्य)
"नाधीयीत श्मशानान्ते ग्रामान्ते **गोव्रजेऽपि वा।"** (मनु)

इस प्रकार का अर्थ करने का कारण यह है कि आगे के प्रकरण में यह स्पष्ट लिखा है कि मर्मपार्श्व पर अभिघात होने से भी मृत्यु हो सकती है। यहां एक बात पर ध्यान रखना चाहिये कि जिस प्रकार मर्म पर वेध तथा आघात न होने से उनका परिणाम बदल सकता है उसी प्रकार आघात और वेध की गहराई के अनुसार भी मर्माभिघात के परिणाम में कमी बेसी तथा हेर फेर संभव है।

मर्मप्रहार का महत्व:—

"संभिन्नजर्जरितकोष्ठशिरःकपाला, जीवन्ति शस्त्रनिहतैश्च शरीरदेशैः।
छिन्नैश्च सक्थिभुजपादकरैरशेषैर्येषां न मर्मसु कृता विविधाः प्रहाराः ॥
(सु० शा० ६)

तीसरा अध्याय

(उर्ध्व शाखाओं के मर्म)

१ **क्षिप्रमर्म**—यह स्नायुमर्म है। इसकी मोटाई आधा अंगुल अर्थात् आधा इञ्च है। यह कालान्तर प्राणहर मर्म है। यह हाथ के अंगूठे और प्रदेशिनी अंगुली के मध्य में स्थित है। यहां पर विद्ध होने से मनुष्य की मृत्यु आक्षेप नामक रोग से होती है।

"तत्र हस्ताङ्गुष्ठाङ्गुल्योर्मध्ये क्षिप्रं नाम, तत्र विद्धस्याक्षेपेण मरणम्।" (सुश्रुत)

"अङ्गुष्ठाङ्गुलिमध्यस्थं क्षिप्रमाक्षेपमरणम्।" (अ०हृ०शा० ४)

इस मर्म की शारीरिक रचना—प्रत्यक्षशारीर की दृष्टि से यह मर्म 'अङ्गुष्ठ तर्जनी शलाकान्तरीय' (first intermeta, carpal space) स्थान में स्थित है। इसमें 'वहिः प्रकोष्ठा धमनी' की 'शलाका पृष्ठिका' शाखा (first dorsal meta carpal artery) लगी रहती है। इसके अतिरिक्त 'अंगुष्ठापकर्षणी कण्डरा' (Tendon of Abductor Pollices) 'अंगुष्ठसंकोचिनी दीर्घा' के गम्भीर भाग की कण्डरा (Tendon of deep portion of flexor Polliecs bervis), वहिः प्रकोष्ठीया धमनी की शाखा (Anteria princeps Pollices or Branches of the radial artery), 'करतल धानुषी गम्भीरा' की शाखा (Branches of the deep volar arch), प्रकोष्ठीया करतली तर्जनी मूलगा (Anteria Volaris Radialis Indices), मध्यम नाड़ी की कराङ्गुलीया शाखा (Digital branches of medium nerve) और प्रथम शलाकान्तरीया पश्चिमा (First Dorsal interosseous muscle) नाम की पेशी जुड़ी रहती है।

इस मर्म के विद्ध होने से 'आक्षेप' नामक रोग से मृत्यु होती है। आक्षेप से 'कनवल्सन' (Convulsion) और धनुर्वात (Titanus) दोनों का बोध होता है। ये दोनों रोग रक्तस्रावाधिक्य और अभिघात से हुआ करते हैं। जब रक्तस्रावाधिक्यजन्य आक्षेप होता है तब मृत्यु तत्काल होती है और जब आघातजव्रण में धनुर्वात के जीवाणु का संक्रमण होने से धनुर्वात होता है तब कालान्तर में मृत्यु होती है। हाथ और पैर के अभिघातों में अधिकतर धनुर्वात रोग होने की सम्भावना रहती है क्योंकि धनुर्वात के जीवाणु का संक्रमण हुआ करता है। यह अनुभव सिद्ध है।

चित्र १

(उर्ध्व शाखा के मर्म)

(१) क्षिप्र मर्म

१ कराङ्गुष्टापकर्षिणी कण्डरा।
२ कराङ्गुष्ठमूलगा धमनी।
३ मध्यम नाड़ी के अंगुलियों में जाने वाली शाखा।
४ कराङ्गुष्ठ संकोचिनी ह्रस्वा के गम्भीर भाग की कण्डरा।
५ प्रथम शलाकान्तरीया पश्चिमा पेशी।

(२) तलहृदय मर्म

१ कराङ्गुष्ठापकर्षिणी पेशी।
२ करतल धानुषी धमनी।
३ शलाकान्तरीया पेशी।
४ अनुकण्डिका।

(३) कूर्च मर्म

१ कराङ्गुली प्रसारिणी कण्डरा।
२ वहिः प्रकोष्ठीया धमनी।
३ कराङ्गुष्ठ प्रसारिणी दीर्घा की कण्डरा
४ तर्जनी प्रसारिणी कण्डरा।
५ वहिः प्रकोष्ठीया धमनी की कराङ्गुष्ठ मूलशलान्तरीया शाखा।

(४) कूर्चशिर मर्म

१ अन्तः प्रकोष्ठीया धमनी।
२ मध्यम नाड़ी।
३ करकूर्च बंधिनी स्नायु का अनुप्रस्थ भाग।

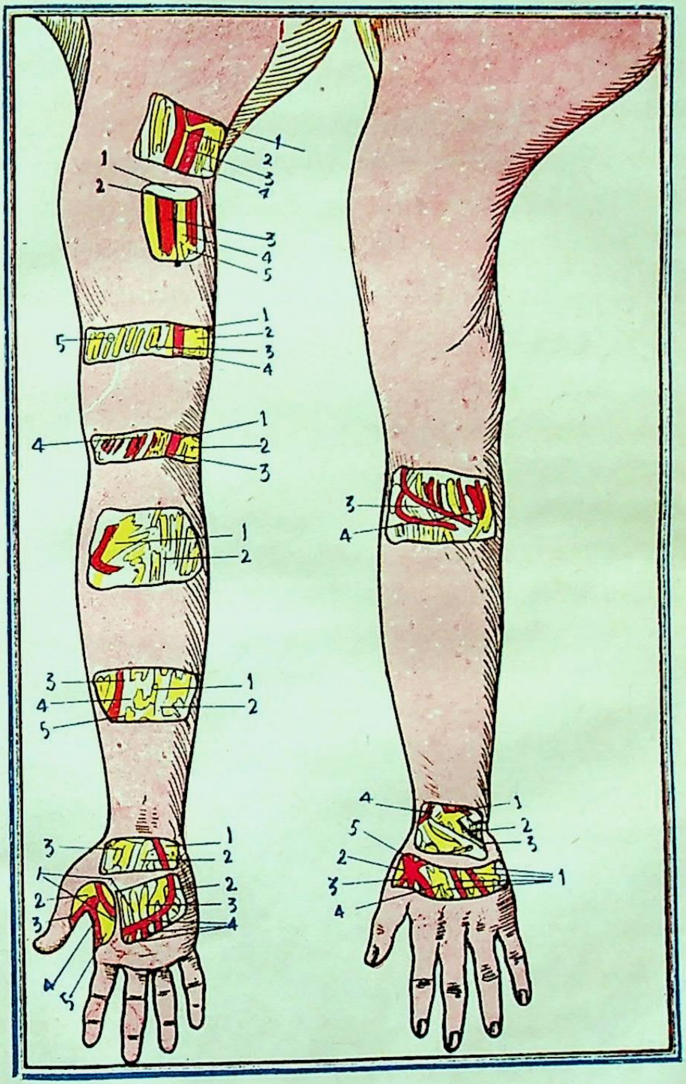
(५) मणिबन्ध मर्म

१ प्रकोष्ठास्थिबंधिनी स्नायु।
२ अन्तः प्रकोष्ठबंधिनी स्नायु।
३ वहिः प्रकोष्ठ-कूर्च बंधिनी स्नायु।
४ वहिः प्रकोष्ठ बंधिनी स्नायु।

(६) इन्द्रवस्ति मर्म

१ मध्यानुगा नाड़ी।
२ कराङ्गुली संकोचिनी पेशी।
३ वहिः प्रकोष्ठीया धमनी।
४ करविवर्त्तिनी दीर्घा पेशी।
५ मणिबंध संकोचिनी पेशी।

मम विज्ञान चित्र १ पृष्ठ २८



(७) कूर्पर मर्म

१ बहिः प्रकोष्ठ बंधिनी स्नायु ।
२ अन्तः प्रकोष्ठ बंधिनी स्नायु ।
३ करतल विबंधिनी स्नायु ।

(८) आणि मर्म

१ मध्यानुगा नाड़ी ।
२ अन्तः प्रकोष्ठीया नाड़ी ।
३ गम्भीर पगण्डिका धमनी ।
४ द्विशिरस्का बाह्वी पेशी ।

(९) बाह्वी मर्म

१ बाह्वी धमनी अपने शाखाओं के साथ ।
२ मध्यानुगा नाड़ी ।
३ बहिः प्रकोष्ठीया नाड़ी ।
४ अन्तः प्रकोष्ठीया नाड़ी ।
५ द्विशिरस्का बाह्वी पेशी ।

(१०) लोहिताक्ष मर्म

१ उरश्छदा दीर्घा पेशी ।
२ ,, लघ्वी ,, ।
३ बाह्वी धमनी और सिराएँ ।
४ मध्यानुगा नाड़ी ।
५ अन्तः प्रकोष्ठीया नाड़ी ।

(११) कक्षधर मर्म

१ कक्षानुगा धमनी और सिरा ।
२ मध्यानुगा नाड़ी का मध्यभाग ।
३ अन्तः प्रकोष्ठीया नाड़ी ।
४ उरश्छदा लघ्वी की कण्डरा ।

प्रतिकार—इस मर्म की शरीररचना को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि यहां पर अभिघात होने से रक्तस्रावाधिक्य तथा जीवाणु संक्रमण से आक्षेप रोग होकर मृत्यु होती है। अतः इस के प्रतिकार में दो बातों पर ध्यान देना होगा। प्रथम रक्तस्राव को बन्द करना और दूसरा जीवाणु के संक्रमण को रोकना।

(१) रक्तस्राव को रोकने के लिये निम्न क्रियायें करनी होती है :—

"चतुर्विधं यदेतद्धि रुधिरस्य निवारणम् ।
सन्धानं स्कन्दनं चैव पाचनं दहनं तथा ॥
व्रणं कषायः सन्धत्ते रक्तं स्कन्दयते हिमम् ।
तथा सम्पाचयेद्भस्म दाहः संकोचयेत् सिराः ॥
अस्कन्दमाने रुधिरे सन्धानानि प्रयोजयेत् ।
सन्धाने भ्रश्यमाने तु पाचनैः समुपाचरेत् ॥
कल्पैरेतैस्त्रिभिर्वैद्यः प्रयतेत यथा विधिः ।
असिद्धमस्तु चैतेषु दाहः परम इष्यते ॥" ॥ (सु० सू० १४)

रक्तस्राव को रोकने के चार उपाय हैं—(१) संधान, (२) स्कन्दन, (३) पाचन और (४) दहन। संधानकर्म के लिये कषाय का प्रयोग करते हैं और स्कन्दन के लिये हिम (शीत द्रव्य) का। पाचन के लिये भस्म का और सिराओं के संकोच के लिये दाह का प्रयोग होता है। संधायक द्रव्यों के औषधों के कषाय की धारा देने से विद्ध तथा आहत स्थान संधित हो जाता है जिससे रक्तस्राव बन्द हो जाता है। शीतल द्रव्य बरफ आदि के प्रयोग से रक्त जम जाता है जिससे रक्त का स्राव बन्द हो जाता है। भस्म आदि विद्ध तथा आहत स्थान को पचाकर रक्तस्राव को रोकते हैं। रक्तस्राव में सर्व प्रथम शीत क्रिया से रक्त को स्कन्दित करने का प्रयत्न करते हैं जब यह क्रिया रक्त को स्कन्दन करने में सफल नहीं होती तो संधान की क्रिया अर्थात् संकोचक औषधों के कषाय की धारा देते हैं जो अभिहत तथा विद्ध स्थानों के तन्तुओं में संकोच पैदा कर रक्तस्राव को रोक देता है। संधानक्रिया की असफलता में पाचक भस्मों का प्रयोग करते हैं। जब इससे भी सहायता नहीं मिलती तो दग्ध द्वारा रक्तस्राव को बन्द करते हैं। रक्तस्राव को बन्द करना जीवन की रक्षा के लिये परमावश्यक है। क्योंकि रक्त ही जीव का स्थान है और रक्त ही से प्राणी का प्राण धारण होता है।

इसी से आचार्यों ने कहा है कि—

"देहस्य रूधिरं मूलं रूधिरेणैव धार्यते।
तस्मात् यत्नेन संरक्ष्य रक्तं जीव इति स्थितिः॥"

(सु० सू० १४)

१ स्कन्दन के लिये—शीतल जल धारा, बरफ आदि का प्रयोग।

२ संधान के लिये--पञ्च वल्कल, हरीतक्यादि तथा क्षीरी वृक्ष का कषाय स्फटिक जल, गुडूची, गोजिह्वा, दूर्वा, बला, कोमल नारिकेल जल, चन्दन, उशीर, लोध्र आदि का कषाय बनाकर धारा देवें।

वेदना की शान्ति के लिये--भूनिम्ब, गुडूची, चन्दन, शतावरी, बलाद्वय का क्षीर कषाय बनावे और धारा देवें।

कन्पारसार (alors)

दाह शान्ति के लिये—सौंफचूर्ण घृत मिलाकर तथा कल्याण घृत के साथ खाने को देवें। ?

शिरःशूल के लिये—बलामूल स्त्रीदुग्ध में घोसकर मक्खन और कुमारी-स्वरस मिलाकर भ्रूप्रदेश पर लेप कर दें।

मूर्च्छा शान्ति के लिये—घी, तेल, दूध और नारिकेलजल समभाग मिलाकर शिर को छोड़ कर समस्त शरीर पर लेप करे।

स्थानीय शोथ तथा पीड़ा को दूर करने के लिये—चन्दन, उशीर, लोध्र, लोहबान, जीरा, अजवायन, एला, भूनिम्ब आदि का लेप करे।

व्रणरोपन के लिये—कदम्बत्वक्, गोजिह्वा स्वरस में घीसकर स्त्रीदुग्ध और मक्खन मिलाकर व्रण पर लेप करें।

आभ्यन्तर प्रयोग के लिये—वासा, अलाबुपत्र, स्थल कमल, आम्र और शिग्रुपत्र, इनका स्वरस ४ भाग, घी १ भाग, जीरक कषाय १ भाग, दूध १ भाग। इन्हें सिद्ध कर देवें।

३ पाचनकर्म—रक्तस्राव को बन्द करने के लिये यह तीसरा प्रतिकार है। स्कन्दन और संधान क्रिया के असफल होने पर इसका प्रयोग होता है। यह क्षौम आदि को भस्म कर के निर्मित होता है।

४ दाहकर्म—उक्त तीनों क्रियाओं के क्रमशः करने पर सफलता नहीं होने से अन्त में शलाका आदि को दग्ध कर अभिहत तथा विद्धस्थान को उक्त दग्ध शलाका से दग्ध किया जाता है। यह क्रिया आधुनिक चिकित्सक भी उक्त कार्य के लिये करते हैं।

रक्तस्राव को रोकने के निम्न आधुनिक उपाय है :—

(१) अभिहत तथा विद्ध स्थान के उपर भाग को हाथ से तथा अन्य किसी बंधन के द्वारा शीघ्र दबाना। इस क्रिया से रक्तवाहिनियां दब जाती हैं जिससे रक्त का आना बन्द हो जाता है।

(२) शीतोपचार तथा तन्तुसंकोचक द्रव का प्रयोग। इस प्रयोग से रक्त

जमने लगता है तथा तन्तुएँ संकुचित होकर रक्तस्राव बन्द हो जाता है। इसके लिये वरफ तथा अन्य संकोचक द्रवों का प्रयोग करते है।

(३) रक्त वाहिनियों का (Legature)—सदंश यन्त्र से रक्त वाहिनियों को पकड़ कर रेशम तथा नस से उसे सुबद्ध कर देते हैं।

(४) ऐसे स्थल जो उक्त सदंश से वहां की रक्त वाहिनियां पकड़ में नहीं आती तो वहां दग्ध क्रिया (Cantery) द्वारा रक्त को बन्द करते हैं।

जीवाणु संक्रमण का प्रतिकार—इसके संक्रमण को रोकने के लिये अभिघात के वाद सर्व प्रथम शीघ्र ही प्रतिषेधक मात्रा में 'ऐन्टी टीटेनिक सीरम (Anti tetonic serum) की सूची वेध (Injection) कर देना आवश्यक है। कारण इस व्याधि के प्रादुर्भाव के पश्चात् इसकी चिकित्सा अति कठिन हो जाती है। वादमें व्रणस्थान को क्रिमिनाशक द्रवों से प्रचलित कर शुचिवंध कर देना चाहिये और उसके वाद व्रणोपचार की विधि से चिकित्सा करें। व्याधि के प्रदुर्भूत हो जाने पर उक्त औषध की रोगमुक्त्यात्मक (Curative) मात्रा की सूची वेध करना चाहिये। और रोगी को अप्रकाश स्थान में सुरक्षित रखना चाहिये। आयुर्वेद में इस रोग की शान्ति के लिये वृहत् वातचिन्तामणिरस, महा माष तैल, एकाङ्गवीररस, मल्ल सिन्दूर, महाबलाद्यरिष्ट आदि का प्रयोग होता है। भृंगराज, ताम्रकूट (तम्बाकू) तथा विजया का प्रयोग भी इसमें लाभ करता है। यह रोग इतना भयंकर है कि इससे आक्रान्त रोगी प्रायः ही बचते हैं।

२ तल हृदय मर्म—यह मांसमर्म करतल मध्य में मध्यमांगुली की रेखा में ऊपर की ओर स्थित है। यह कालान्तर प्राणहर मर्म है और इसकी मोटाई अर्धांगुल प्रमाण अर्थात् आधा इञ्च है। इस संस्थान पर विद्ध हुए मनुष्य की तीव्र वेदना से मृत्यु होती है।

"मध्यमाङ्गुलीमनुपूर्वेण मध्ये हस्ततलस्य 'तल हृदयं' नाम तत्रापि रूजाभिर्मरणम्।" (सुश्रुत)।

रचना—यह मर्म करतल मध्य में स्थित है। इसके ऊपर करतलिका स्नायु (Palmer aponeurosus) फैली रहती है। इसके पीछे करतल धानुषी

धमनी (Palmer arch) और उसकी शाखाएँ तथा नाड़ियां (Nerves) भी होती हैं। इनके कारण हस्ततल प्रदेश में मर्मत्व आजाता है। इसके अतिरिक्त इनमें निम्न अवयव और जुड़े रहते हैं :—

(१) करतल धानुषी उत्ताना (Superficial Volar arch)
(२) करतल धानुषी गम्भीरा (Deep Volar arch)
(३) अंगुष्ठ मूल कर्षणी पेशी (Abductor pollices)
(४) अंगुष्ठ संकोचिनी ह्रस्वा (Flexor pollices Verbes)
(५) शलाकान्तरीया पेशी (Inter ossei muscle)
(६) अनुकण्डरिका पेशी (Lumbericalis)

अतः इस मर्मस्थल पर अभिघात होने से अधिक रक्तस्राव होने लगता है और अन्य दूषण प्रविष्ट हो जाने से 'सेल्युलाइटिस' जिसे सांघातिकशोथ कह सकते हैं, हो जाता है और जीवन खतरे में पड़ जाता है। ऊपर के सूत्र में इस मर्म पर आघात होने से वेदना से मृत्यु होती है ऐसा कहा गया है। इस का तात्पर्य यह है कि उक्त स्थल (मर्म) पर अभिघात होने से तीव्र वेदना होती है और वेदना के कारण स्तब्धता होकर कालान्तर से मृत्यु हो जाती है। स्तब्धता से मृत्यु का वर्णन पहले कर चुके हैं।

उपर्युक्त दोनों मर्मों पर अभिघात होने से रक्त का अधिक स्राव होता है और उससे मृत्यु होती है इसका भी समर्थन मिलता है जैसे :—

"क्षिप्रेषु तत्र सतलेषु हतेषु रक्तं गच्छत्यतीव पवनश्च रुजं करोति।
एवं विनाशमुपयान्ति हि तत्र विद्धा वृक्षा इवायुधविघातनिकृत्तमूलाः॥
(सुश्रुत)

हाथ पैरों के क्षिप्र और तल हृदय मर्म के विद्ध होने पर रक्तस्राव अत्यधिक होता है और वायु अधिक पीड़ा उत्पन्न करती है। अतः शस्त्र से मूल कटे हुए वृक्ष के समान मनुष्य का उक्त मर्माभिघात होने पर अत्यधिक रक्तस्राव तथा तीव्र पीड़ा से मृत्यु हो जाती है।

अष्टाङ्गसंग्रह में रक्तस्राव के भयंकरता को प्रतिपादित करते हुए स्पष्ट रूप से कहा गया है कि:—

"अमर्मविद्धोऽपि नरश्छेदभेदादिपीड़ितः ।
अतिनिःसृतरक्तश्च सद्यस्त्यजति जीवितम् ॥
अतोऽन्यथा जीवति तु विद्धः शरशतैरपि ॥"

(अ० स० शा० ७)

इस पर इन्दु ने टीका करते हुए कहा है—"न केवलं मर्मविद्ध एव जीवितं त्यजति यावदु-मर्मविद्धोऽपि रक्तस्यातिस्रुतेः सद्य एव जीवितं जहाति। अतोऽन्यथा यथोक्तवैपरीत्ये मर्मव्यधे रक्तास्रुतौ च शरशतैरपि विद्धो जीवति।" अर्थात् छेद, भेद, वेधादि से यदि रक्त अत्यधिक राशि में निकले तो वेध का स्थान मर्म हो या न हो मृत्यु हो ही जाती है। और मर्मस्थान पर वेध होने पर भी यदि रक्तस्राव नहीं हो तो सैकड़ों शरों से वेध होने पर भी मनुष्य जीवित रह सकता है। इस प्रकार रक्तस्रावाधिक्य से मृत्यु का होना, यह प्रधान लक्षण कहा है।

रक्तस्रावाधिक्य का लक्षण अष्टाङ्गसंग्रह में बहुत ही सुन्दर रूप में कहा है जो आधुनिक रक्तस्रावाधिक्य के लक्षण से पूर्ण रूपेण समर्थित है जैसे :—

"विक्षिप्यते भृशं शून्यो भ्रमति वेपते ।
ऊर्ध्वं श्वसिति कृच्छ्रेण स्रस्तगात्रो मुहुर्मुहुः ॥
हृदयं दह्यते चास्य नैकस्थानेऽवतिष्ठते ।
मर्मोपघातान्मरणमेतैर्लिङ्गैः समश्नुते ॥ (अ० सं० शा० ७)

रक्तस्राव के कारण शरीर में विष्णुपदामृत (oxygen) की कमी हो जाती है जिस की पूर्त्ति के लिये रोगी बेचैनी के साथ इधर उधर शरीर को फेंकता तथा घुमाता है। इसे आधुनिक वर्णन में टौसिंग (Tossing) शब्द से निर्देश किया है। प्राणवायु (oxygen) की कमी से वह बड़ी जोर के साथ और तेजी से सांस लेने लगता है (gasps for breath)। अन्त में अवसाद, सन्यास और आक्षेप के साथ उस के प्राण पखेरू उड़ जाते हैं। क्षिप्र और तल हृदय का महत्व रक्तस्राव की दृष्टि से ही अधिक होता है। इन मर्मों की सिराएँ तथा धमनियां अत्यन्त निगूढ़ होती है जिससे वहां से होने वाले रक्तस्राव को रोकना कठिन हो जाता है। आधुनिक काल में भी प्रत्यक्ष शारीर विज्ञान में

तथा सांगोपाङ्ग शल्यचिकित्सा में आश्चर्यजनक उन्नत्ति के होने पर भी इन स्थानों से रक्तस्राव को रोकने में कठिनाई का अनुभव करना पड़ता है। प्रमाणार्थ—

"Wounds of the Volar arches are always difficult to deal with. Wounds of the Palmer arch are always serious on account of the depth of the Vessels." (Grey's Anatomy). यही कारण है कि आचार्यों ने इन मर्मों के अभिघात में प्राण रक्षा के लिये हाथ, पांव, मणिवंध और गुल्फप्रदेश से काट कर रक्त रोकने और प्राण बचाने तक का विधान किया है। जैसे :—

"तस्मात्तयोरभिहतस्य तु पाणिपादं
छेत्तव्यमाशुमणिबन्धनगुल्फदेशे ॥" (सु० शा० ६)

हाथ तथा पैर के क्षिप्र और तलहृदय मर्म के विद्ध होने पर हाथ या मणिवंध, पैर तथा गुल्फ प्रदेश को काट कर भी रोगी को बचाना चाहिये। इस का समर्थन करते हुए आगे कहा है कि:—

"छिन्नेषु पाणिचरणेषु सिरा नराणां,
संकोचमीयुरसृगल्पमतोनिरेति।
प्राप्यामितव्यसनमुग्रमतो मनुष्याः,
संछिन्नशाखातरुवन्निधनं न यान्ति॥" (सु. शा. ६-४१)

हाथ-पैर के कट जाने पर छिन्न स्थान की सिरायें सिकुड़ जाती हैं अतः रक्तस्राव अधिक नहीं होता। अतः (हस्त-पाद छेदन रूप) कठिन विपत्ति को प्राप्त होकर भी, शाखाऐं कटी हुई वृक्ष के समान, मनुष्य मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। परन्तु जब मोटी रक्तवाहिनियां कट जाती हैं तब उक्त नैसर्गिक उपायों पर ही संतोष करने से काम नहीं चलता। उन्हें शीघ्र कृत्रिम उपायों द्वारा रक्तस्राव को रोकना अभिष्ट होता है। अतः उक्त मर्मों के अभिघात या वेध में यदि रक्त रोकने के उपर्युक्त उपायों से सफलता न मिले तो ऐसी परिस्थिति में उक्त छेदन की क्रिया कर वहां के रक्तवाहिनियों को संदंश से पकड़ कर सुबद्ध करना आवश्यक है। यह उपाय रक्तस्राव को रोकने के लिये अन्तिम है। इससे विद्ध की जान बच सकती है। इसकी और भी पुष्टि निम्न पद से हो जाती है—

"एवं भवेच्च सुगमं विविधैरुपायैरास्थापनमसृविधारकशोणितस्य ।"
(सुश्रुत)

मर्माघात, रक्तस्राव तथा अंगदुष्टि में छेदन (Amputation) का विधान अतिप्राचीन है । जैसे—

"परोऽप्यपत्यं हितकृद् यदौषधं स्वदेहजोऽप्यामयवत्सुतोऽहितः ।
"छिन्द्यात्तदङ्गं यदुतात्मनोऽहितं शेषं सुखं जीवति यद्विवर्जनम् ॥"
(श्रीमद्भागवत ७–५–३७)

आधुनिक चिकित्सा में भी यह उपाय सम्मत है । जैसे—"The actual removal of limbs may be required as an immediate urgent necessty in order to save life from Shock, Haemorrhage, or infection" (Mannual of Surgery Rose & Carless) प्राचीन और अर्वाचीन शल्यशास्त्र सम्मत होने पर भी अंगच्छेद का उपाय सरल नहीं है । चिकित्सक के ऊपर इसका बहुत बड़ा उत्तरदायित्व होता है और व्रणी के लिये एक स्थायी अंगवैकल्य हो जाता है । इसलिये अंगच्छेदन का उपाय केवल आत्ययिक अवस्था में ही बहुत सोचविचार कर करना उचित है । हथेलियों और तलवों की चोट एक बहुत साधारण घटना है । इसकी चिकित्सा का ज्ञान होना परमावश्यक है । इसलिये यहां पर उसकी विधि बतलायी जाती है ।

प्रतिकार—हाथ या पैर के तलहृदय से रक्तस्राव होने पर व्रणमुख को कुछ चौड़ा करके धमनी सदंश (Artery forceps) से टूटी हुई धमनी के दोनों सिरे पकड़ कर तांत से बांध देना चाहिये । यदि यह सम्भव न हो तो धमनी-पीडन संदंश से दोनों सिरे दबा कर संदंशों को वैसे ही व्रण में रख कर पट्टी बांध देना चाहिये । यदि संदंश से स्राव का मुख पकड़ने में कठिनाई हो तो व्रणमुख पर स्वच्छ कवलिका की मोटी तह बनाकर (Pad of Sterelized Gauze) और मुट्ठी बांधकर पट्टी लगाना चाहिये और रोगी को विस्तरे पर हाथ तथा पैर ऊँचा करके लिटाए रखना चाहिए । यदि इससे भी रक्तस्राव बन्द नहीं हो तो बाहु या उस धमनी के ऊपर रज्जुबन्धन (Tourniquet) करके या उन धमनियों को खोलकर उनके ऊपर टांका (Ligature) लगाकर रक्तस्राव रोकना

चाहिये। अन्तिम दो उपायों से रक्तस्राव अवश्य बन्द हो जाता है। आधुनिक-काल में रक्तस्कन्दन, शस्त्रकर्म और जीवाणुनाशन के साधनों में आश्चर्यजनक उन्नति होने के कारण हाथ, पैरों के चोट में उनका छेदन करने का भयावह उपाय का प्रसंग बहुत कम आता है।

आयुर्वेद में रक्तस्राव को रोकने के जो उपाय वर्णित हैं उन्हें क्षिप्रमर्म की चिकित्सा में कहा जा चुका है। उसके अतिरिक्त निम्न कतिपय योग तदर्थ तथा तज्जन्य अन्य उपद्रवों की शान्ति के लिये व्यवहृत होता है।

१—पीड़ा और शोथ के लिये—कपित्थ, प्लक्ष, दूर्वा, गोजिह्वा, प्रत्येक २ पल लेकर अष्टगुण जल में क्वाथ करे; चतुर्थांश शेष रहे तो उतार कर छान ले। समभाग नारिकेल जल, तिल का तैल ८ पल मिलाकर धारा देवे। या समभाग तैल और घी की धारा देवे। शतधौत घृत का लेप भी पीड़ा की शान्ति में तथा दाह को दूर करने में सहायक होता है।

२. आभ्यन्तर प्रयोग के लिये:—

तिक्त कषाय	१ भाग
कोमल नारिकेल जल	१ ,,
शतावरी स्वरस	१ ,,
दूध	$\frac{1}{2}$,,
घी	$\frac{1}{2}$,,

कल्कद्रव्य—उशीर, सुगन्धबाला, चन्दन, दूर्वामूल, भूनिम्ब, चौलाई, सब के समभाग खांड मिलाकर स्नेहविधि से घृतपाक करे और सेवन करावे।

३—व्रण शूल के लिये—क्षीरी वृक्ष की छाल, दूर्वा, गोजिह्वा, लक्ष्मणा, इनका स्वरस निकाले। प्रत्येक $\frac{1}{4}$ भाग, घृत $\frac{1}{2}$ भाग, दूध २ भाग। कल्क-चन्दन, यष्टि मधु, समभाग। स्नेहविधि से घृत तैयार करे।

४—व्रणरोपण के लिये—उदुम्बरत्वक्, इरिमेदत्वक्, गोजिह्वा, लक्ष्मणा, तिल, दूर्वा, इन्हें दूध में पीस कर और मक्खन मिलाकर लेप करें।

३—कूर्चमर्म—क्षिप्र के ऊपर दोनों ओर कूर्चनामक मर्म है। यह स्नायु-मर्म है। इसकी गणना वैकल्यकर मर्मों में है और उसकी मोटाई चार अङ्गुल अर्थात् ४ इञ्च है। इस मर्म पर वेध होने से हाथ में टेढ़ापन और कम्पन होता है।

"क्षिप्रस्योपरिष्ठादुभयतः कूर्चो नाम, तत्र हस्तस्य भ्रमणवेपने भवतः।"

(सु० शा० ६)

रचना—इस मर्म से करकूर्चास्थियां तथा कराङ्गुली मूलशलाकाएँ और इनको जोड़ने वाली स्नायु (Carpo-metacarpal and intercarpal ligaments) अभिप्रेत हैं। इस मर्म की बनावट में निम्न अवयव जुड़ते हैं।

(१) अङ्गुष्टप्रसारिणी दीर्घा की कण्डरा (Tender of extener Pollicis longus)

(२) अङ्गुलीप्रसारिणी ह्रस्वा की कण्डरा (Tendon of digetorum Commum)

(३) तर्जणीप्रसारिणी की कण्डरा (Tendon of Extenser Indicis Propricis)

(४) मणिबंधप्रसारिणी विहःस्था दीर्घा (Tendon of extensor Carpo-radialis longus)

(५) मणिबंधसंकोचिनी वीहःस्था दीर्घा (Tendon of flexor carpo-radialis Bervis)

(६) बहिःप्रकोष्ठीया धमनी शाखाओं सहित (Radial artery & its branches)

(७) बहिः प्रकोष्ठीयाधमनी और उसकी शलाकापृष्ठिका धमनी।

(८) शलाकान्तरीया पेशी (Interossions muscles)

(९) करकूर्चशलाकासंधि और शलाकान्तरीया संधि (The carpo-meta earpal Articulations & Inter-meta carpal articulations)

वक्तव्य—इस मर्मस्थल की बनावट को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि इस स्थल पर किसी प्रकार अभिघात या वेध हो तो कूर्चनिर्मापक अस्थियों की चोट तथा कण्डराओं और स्नायुओं के अभिहत होने से स्थानीय टेढ़ापन तथा शैथिल्य (भ्रमण) हो जायगा और तत्स्थानीय संधियों के विश्लिष्ट होजाने से उनकी स्थिरता नष्ट होकर कम्प पैदा हो जायगा। इस प्रकार इस मर्म के अभिघात से यह अंग विकल हो कार्याक्षम हो जाता है।

प्रतिकार—सर्व प्रथम अभिघातजन्य पीड़ा को शान्त करने के लिये तथा पीड़ाजन्य स्तब्धता से वञ्चित रखने के लिये वेदनाहर औषधों का प्रयोग करना चाहिये और शीतल जल आदि की धारा से रक्तस्राव यदि होता हो तो उसे रोकने की चेष्टा करनी चाहिये। पश्चात् इस मर्म के अवयव को हाथ में लेकर विश्लिष्ट अवयवों को संश्लिष्ट कर उस पर वेदनाहर लेप दे कर पट्टी बांध देनी चाहिये। यह स्नायुमर्म है, अतः वहां अभिघात होने से स्नायुएँ टूट जाती हैं जिससे यह अङ्ग शिथिल तथा कम्पनयुक्त हो जाता है, अतः पट्टी को सुदृढ़ रखने के लिये काष्टपट्ट (Splint) दे देना श्रेयस्कर होता है। पेरिसप्लेस्टर से भी इस अङ्ग को सुबद्ध कर सकते हैं। इस के अतिरिक्त अभिघातजन्य अन्य शारीरिक विकारों की भी तदनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। व्रण हो जाने पर व्रणवत् उपचार करना चाहिये। व्रण की चिकित्सा के लिये शोधन रोपन औषधों का प्रयोग तथा कृमिहर द्रवों से प्रक्षालन करना आवश्यक है। पूय के आविर्भाव हो जाने पर पूयहर औषधों का सेवन कराना चाहिये।

चिकित्सा के लिये क्षिप्र में उपदिष्ट योगों को प्रयोग में ला सकते हैं। गुडूची, बलामूल, महाबला तिल, दूध इनकी लप्सी बनाकर लेप करने से लाभ होता है। बलाद्वय, शतावरी, भूनिम्ब, गुडूची का क्षीरपाक सेवन करने से भी लाभ होता है। पूय के लिये शुद्ध गुग्गुल के योगों का प्रयोग करना लाभकर होता है। सप्तविंशतिगुग्गुल, तथा पञ्चामृत गुग्गुल का प्रयोग इस कार्य के लिये विशेष उपयोगी होता है।

व्रण के अच्छा हो जाने पर तथा अभिहत स्थान के संश्लिष्ट हो जाने पर बंध को मुक्तकर अभ्यंग करना आवश्यक होता है। एतदर्थ बलातैल, सैंधवादि

तैल, माषतैल तथा नारायणतैल का आवश्यकतानुसार व्यवहार किया जाता है। रोगी को बलप्रदानार्थ पौष्टिक और सुजर आहार देना चाहिये और अभिहत स्थान को सकर्मण्य बनाने के लिये शनैः २ उसे कर्म में संलग्न करना चाहिये। सैंधवलवण के टुकड़े को मुट्ठी में कुछ कालतक के लिये धारण करने से स्थानीय रक्तसंचार में सहायता मिलती है।

४—कूर्चशिर मर्म—मणिबंध संधि के नीचे दोनों ओर कूर्चशिरनामक मर्म है। यह रुजाकर मर्म है और इसकी मोटाई अर्धाङ्गुल प्रमाण अर्थात् आधा इञ्च है। यहां पर वेध होने से तीव्र पीड़ा और सूजन होती है।

"मणिबन्धसन्धेरधः उभयतः कूर्चशिरो नाम, तत्र रुजाशोथौ।"

(सु० शा० ६)

रचना—इस मर्म से मणिबंध संधि की अन्तःपार्श्विक और बहिःपार्श्विक स्नायुओं (Ulnar and Radial collatral ligaments) का बोध होता है। इसकी बनावट में निम्न अवयव जुड़ते हैं।

(१) करतलान्तरीया स्नायु (Inter- Carpal ligaments)
(२) करतल स्नायु तिरश्चीन (Transverse Carpal ligaments)
(३) अन्तःप्रकोष्ठीया धमनी (Ulner Artery)
(४) मध्यम नाड़ी तथा अन्तःप्रकोष्ठीया नाड़ी की उपरि शाखाएँ।
(Median nerve and superficial branches of the ulnar nerve)
(५) शलाकान्तरीया संधि (Inter carpal articulations)

यह स्नायु मर्म है। अतः यहां पर अभिघात होने से तीव्र पीड़ा होती है। इस स्थान पर अनेक छोटी छोटी अस्थियां स्नायुओं द्वारा निबद्ध है। जब कभी ऐसे संधिस्थल पर जहां स्नायुओं का जमवट हो अभिघात होता है, वहां अत्यधिक पीड़ा तथा उस स्थान पर सूजन होती है। इस तरह की पीड़ा को अर्वाचीन विज्ञान में 'स्प्रेन' (Sprain) कहते हैं। इसकी परिभाषा निम्न प्रकार से की गई है :—"Sprain or strains result from sudden vio

lence applied to a joint either directly or indirectly, as in street accidents, the foot-ball field etc. They consists in tearing or stretching of the ligaments or tendons, insertions of musles close to the articular lines and in not a few instances the synovial membrane is also involved, resulting in a haemmorrhagic effusion in to the joint Cavity. The accident itself is very painful and is likely to be followed by a simple inflamatory reaction as indicated by effusiou. (Rose & Carless).

प्रतिकार—सर्व प्रथम रोगी को तीव्रपीड़ाजन्य स्तब्धता से बचाने के लिये वेदनाहर औषधों का प्रयोग करना चाहिये। रोगी के बलाबल का विचार कर अहिफेन तथा मोरफिया के योगों को उपयोग में लाया जा सकता है। इसका उपयोग मुखद्वार तथा सूचीवेधद्वारा, दोनों प्रकार से होता है। आयुर्वेद के अन्दर अन्य वेदनान्तक योग भी हैं, उनका भी प्रयोग अवस्था और आवश्यकतानुसार किया जा सकता है। इसके बाद स्थानीय शोथ को दूर करने के लिये तथा वेदनाशान्ति के लिये वेदनाहर तथा शोथहर अभिषेक या लेप का व्यवहार करना चाहिये। निर्गुण्डी, विजया, प्रियंगु, उदुम्बर आदि के क्वाथ से अभिषेक तथा हरिद्रा, सज्जीखार (चोटसाजी), गेरु, सुधा (चूना) आदि को जल में घोल कर उष्ण कर लेप करने से उभय कार्य सिद्ध होता है। भांग, सैंधव, प्याज की पोटली बनाकर सेंक (पिण्डसेक) करने से शीघ्र पीड़ा की शान्ति तथा शोथ का नाश होता है। एतदर्थ धाराचिकित्सा भी करते हैं, जिससे पर्याप्त लाभ होता है। गोजिह्वा, लक्ष्मणा, मूर्वा, गुडूची को दूध में मसल कर उसे कोष्ण कर धारा (स्थानीय धारा) का प्रयोग करें। माष (उड़द) का क्षीरकषाय बनाकर उसमें खांड मिलाकर पिलाने से भी लाभ होता है। त्रिफला, पूंगीपुष्प, गुडूची और तिल को उबाल कर दूध में लस्सी बनाकर मक्खन मिलाकर लेप करने से, शोथ और पीड़ा की शान्ति होती है।

आधुनिक चिकित्सा इस तरह के अभिघात में सर्वप्रथम नागद्रव (Lead-

lotion) से अभिहत स्थान को अभिषिक्त कर उस पर बंध देकर विश्रामार्थ छोड़ देते हैं। वेदनाशान्ति के लिये वेदनाहर (Aspirin आदि) औषधों का व्यवहार करते हैं। तीव्र तथा अत्युग्र पीड़ा में मौर्फिया की सूचीवस्ति भी स्तब्धता से सुरक्षित रखने के लिये देते हैं। शोथ को दूर करने के लिये शोथहर लेपों (Antiflamin आदि) का प्रयोग करते हैं।

दुर्बलता के लिये—पौष्टिक औषधियों का प्रयोग करना चाहिये। दूध में हरिद्रा को दे उसका क्षीरपाक देने से अच्छा लाभ होता है। अभ्यङ्ग (बलातैल) से भी लाभ होता है।

५—मणिबंधमर्म—हाथ और प्रकोष्ठ के संयोग पर मणिबंध नामक मर्म है। यह संधिमर्म है और इसकी मोटाई दो अंगुल अर्थात् २ इञ्च है। यहां पर वेध होने से पीड़ा, हाथ में जकड़न और लुल्हापन होता है। अतः यह वैकल्यकर मर्म है।

"हस्तप्रकोष्ठयोः संधाने मणिबंधो नाम, तत्र रुजः स्तब्धहस्तता कुणिर्वा।" (सु० शा० ६)। **"मणिबंधे कुण्ठता"**।

रचना—इस मर्म से कलाई के जोड़ (Wrist joint) का बोध होता है, जिसमें प्रकोष्ठान्तरीय जोड़ (Distal radioulnar) तथा बहिःप्रकोष्ठकर कूर्चास्थि जोड़ (Radio Carpal) दोनों का समावेश होता है। इसकी बनावट में निम्न अङ्ग जुड़ते हैं :—

(१) बहिरन्तःप्रकोष्ठबन्धिनी स्नायु (Radio ulnar ligaments)

(२) मणिबन्धीया अन्तःपार्श्विकी स्नायु (Ulnar Collatral ligaments)

(३) मणिबन्धबन्धिनी स्नायु बहिःस्था (Radio Carpal ligaments)

(४) मणिबन्धीया बहिःपार्श्विकी स्नायु (Radial Collatral ligaments)

नोट—योगसागर की प्रस्तावना में मणिबन्ध का अर्थ (Inter-

carpal ligaments) किया गया है। परन्तु यह अर्थ दो दृष्टिकोणों से उचित नहीं प्रतीत होता। मणिवंध संधिमर्म है, अतः मणिवंध से संधि का ही ग्रहण श्रेयस्कर है। दूसरी दृष्टि यह है कि कूर्चमर्म की दीर्घता ४ अंगुल कही गयी हैं, अतः कूर्च में ही कूर्चान्तर स्नायुओं का समावेश हो जाना चाहिये।

इस मर्म के आहत होने से कलाई की जोड़ में विकृति आजाती है, जिससे वह कार्याक्षम होने से कुण्ठितगति हो जाती है। इस अङ्ग के कुण्ठित तथा स्तब्ध हो जाने से मनुष्य लूल्हा (कुणि) हो जाता है।

प्रतिकार—यहां (मणिवन्ध) पर अभिघात होने से अभिघात की गुरुता अनुसार ही परिणाम होता है। सन्धिविश्लिष्टता (Dislocations) तथा संधिभंग (Fracture) दोनों ही संभव है। अतः प्रतिकार भी परिणाम के के अनुसार ही होगा। सन्धिविश्लिष्ठता में उन्हें पुनः संश्लिष्ठकर बन्धन करना होता है और सन्धिभंग में उन्हें सुव्यवस्थित कर पेरिस प्लास्टर की सुदृढ़ पट्टी देनी होती है। वेदना आदि के लिये पूर्वोक्त वेदनाहर विधि तथा शोथ के लिये शोथहर लेप का उपयोग करना चाहिये।

पीड़ा की शान्ति के लिये यहां भी धाराचिकित्सा करने से लाभ होता है। समभाग घृत तथा तैल की धारा देनी चाहिये। मुस्तक, चन्द, सुगन्धबाला, पर्पटक और उशीर का कषाय बना कर पिलाने से भी लाभ होता है। बलामूलकषाय, जीरकचूर्ण के साथ पिलाने से लाभ होता है। अभिघातजन्य संज्ञानाश में मक्खन और स्त्री-दुग्ध मिलाकर भ्रूप्रदेश पर लेप करें। शतावरीस्वरस ३ भाग, दूध ३ भाग, दोनों को उबाल कर चतुर्थांश शेष रहने पर खांड और केला मिला कर, मसल कर जीरकचूर्ण मिलाकर मध्याह्न में एक बार पिलावे। इससे रोगी को अच्छी शान्ति मिलती है और तर्पण होता है।

व्रण हो जाने पर व्रणवत् उपचार करें।

व्रणशोथ के लिये—बलाचतुष्टय का क्वाथ बनावे। इसमें घी और वराहवसा मिलाकर खूब मथ ले। इसे कम से कम २१ बार मथे और बाद लेप करे। इस योग में रम्भाफल और अण्डा मिला देने से पीड़ा शीघ्र शान्त होती है और व्रणरोपन भी शीघ्र होता है।

सन्धिविश्लिष्ट तथा सन्धिभङ्ग में उक्त विधि से उसे सुव्यवस्थित कर उस अंग को इस प्रकार सुवद्ध कर गले में लटका दे कि उसपर किसी प्रकारसे कोई श्रम न पड़े।

६—इन्द्रवस्ति मर्म— प्रकोष्ठ में हथेली की ओर इन्द्रवस्ति नामक मर्म है। यह कालान्तर प्राणहर मर्म है और इसकी मोटाई भोज और गयदास के अनुसार २ अङ्गुल या २ इञ्च और अन्य आचार्यों के अनुसार अर्धाङ्गुल या आधा इञ्च है। यहां पर वेध होने से रक्तस्रावाधिक्यजन्य क्षय से मृत्यु होती है।
"हस्तं प्रति प्रकोष्ठमध्ये इन्द्रवस्तिर्नाम, तत्र शोणितक्षयेण मरणम्।"
(सु० शा० ६)

रचना—अग्रबाहु के पिण्डली का स्थान जहां पर मणिवंध संकोचिन्यादि उत्तान पेशियों के नीचे अन्तःप्रकोष्ठीया धमनी (Ulnar Artery) और मध्यप्रकोष्ठीका नाड़ी (Median nerve) इत्यादि महत्व के अवयव हैं। इस मर्म की वनावट में निम्न अवयव जुड़ते हैं :—

(१) वहिःप्रकोष्ठीया धमनी, अपनी करतल धानुषी शाखाओं के साथ। (Radial artery with its volar branches)
(२) अन्तःप्रकोष्ठीया धमनी की अरत्नि धानुषी शाखाएँ। (Volar intreossions branches of the ulnar artery)
(३) मध्यप्रकोष्ठीया नाड़ी और उसकी शाखाएँ।
(४) करविवर्तिनी दीर्घा (Pronator Teres muscle)
(५) अङ्गुलीसंकोचिनी मध्यपर्विका (Flexor digitorum smblimiss)
(६) मणिवंधसंकोचिनी वहिःस्था (Flexor Carpi-radialis)

इस मर्म की रचना से ही स्पष्ट हो जाता है कि यहां का अभिघात किस प्रकार कालान्तर में सांघातिक होता है। प्रधान धमनियों तथा नाड़ियों का सन्निपात ही इसके मर्म शब्द को सार्थक वनाते हैं। उक्त धमनियों के अभिहत होने से तथा फटने से रक्तस्राव अधिक होता है और रक्त के क्षय से क्षयजन्य मृत्यु होती है।

प्रतिकर—रक्तस्राव को रोकना इस अभिघात में प्रधान चिकित्सा है। इसका वर्णन पहले कर चुके हैं।

७—कूर्पर मर्म—प्रकोष्ठ और प्रगण्ड या बाहु के संयोग पर कूर्परनामक मर्म है। यह संधिमर्म है और इसकी गणना वैकल्यकर मर्मों में है। इसकी मोटाई ३ अङ्गुल या ३ इञ्च है। यहां पर वेध होने से मनुष्य लुल्हा हो जाता है। **"प्रकोष्ठप्रगण्डयोः संधाने कूर्पर नाम, तत्र कुणिः।"** (सु० शा० ६)

रचना—इस मर्म से कोहनी जोड़ (Elbow joint) का बोध होता है। इसकी बनावट में निम्न अङ्ग जुड़ते हैं।

(१) संधिबंधिनी कोष (Articular capsule)
(२) वहिःपार्श्विका प्रकोष्ठा स्नायु (Radial Callatral ligament)
(३) अन्तप्रकोष्ठा (Ulnar ligament)
(४) कंकणिका स्नायु (Annular ligament)

इस मर्म की रचना को देखने से ही स्पष्ट हो जाता है कि इस पर अभिघात होने से मनुष्य लूल्हा हो जायगा। संधिबंधनी कोष तथा स्नायुओं के टूट जाने से वह निर्बन्ध हो अकर्मण्य तथा कार्याक्षम हो जायगा।

प्रतिकार—इस मर्माभिघात में बंध को सुदृढ़ करने के लिये 'स्वस्तिक बंध' बांधे, पीड़ा की शान्ति के लिये पूर्वोक्त वेदनाहर योगों का आभ्यन्तर तथा बाह्य प्रयोग करें। शोथशान्ति के लिये शोथहर लेप लगावे। एतदर्थ 'मृणालादि लेप' अच्छा हितकर होता है। इस लेप में-मृणाल, कुञ्चिका, कुटजत्वक्, निम्बत्वक्, अमृता, त्रिफला, रजनी, सर्षप, नागरमोथा, खश, पूति, तिल, चतुःक्षीरीवृक्षत्वक्, सुगन्धवाला, चन्दन, मोम, दुर्वा, इक्षु, कुटकी, सारिवा, सैन्धव, पर्पट, लक्ष्मणा, एरण्डबीज, इनका क्षीरपाक कर इसमें घी, तेल और मधु मिलाकर लेप करें।

८—आणी मर्म—कूर्पर से तीन अंगुल ऊपर दोनों ओर आणीनामक मर्म है। यह स्नायुमर्म है और इसकी दीर्घता ३ अंगुल या ३ इञ्च है। यहां पर अभिघात होने से सूजन की वृद्धि और हाथ में स्तब्धता (अकड़न या शून्यता) होती है।

"कूर्परादूर्ध्वमुभयतस्त्र्यङ्गुलमाणी नाम,
तत्र शोफाभिवृद्धिः स्तब्धबाहुता च।" (सु० शा० ६

रचना—इस मर्म से 'द्विशिरस्का पेशी की कण्डरा' (Tendon of Biceps) के स्थान का बोध होता है। इस पार्श्व में बाह्वी धमनी तथा मध्य-प्रकोष्ठिका नाड़ी रहती है। इस मर्म के उपद्रव कण्डरा तथा नाड़ी के वेध से होते हैं। इसकी रचना में निम्न अंग जुड़ते हैं।

(१) बाह्वी धमनी (Arteria profunda Brachei)
(२) मध्य प्रकोष्ठिका नाड़ी (Median nerve on the midle side)
(३) अंतःप्रकोष्ठिका नाड़ी (Ulnar nerve)
(४) बहिःप्रकोष्ठीया नाड़ी (Radial nerve)
(५) मांस तथा त्वचा को अनुप्राणित करने वाली नाड़ी।
(६) द्विशिरस्का पेशी (Biceps Brachei muscles)
(७) त्रिशिरस्का पेशी (Triceps ,,)
(८) काकोष्ठिका पेशी (Coraco Brachis muscles)

उक्त रचना से स्पष्ट हो जाता है कि यह स्थान मांसल है, अतः यहां अभिघात होने से सूजन की वृद्धि होती है, बाहुओं का आशनादि कर्म मांसपेशियों के कर्मण्यता पर निर्भर करता है। तत्रस्थ कण्डरा तथा पेशियों को अनुप्राणित करने वाली नाड़ियों के अभिघात से मांसपेशियां अकर्मण्य हो जाती हैं, जिससे बाहु स्तब्ध हो जाता है।

प्रतिकार—सर्व प्रथम वेदनाशान्त्यर्थ वेदनाहर लेपों का प्रयोग करें और यदि रक्तस्राव हो तो उसे बन्द करने का प्रयत्न करें। यदि संज्ञानाश हो गया हो तो तदर्थ प्रतिकार करना चाहिये। पश्चात् शोथ के कम हो जाने पर अभ्यङ्ग द्वारा स्थानीय नाड़ियों का बृंहण करना चाहिये। शोथहर लेपों के उपयोग से शोथ का नाश हो जाने पर ही अभ्यंग उपयुक्त होता है।

वेदनाशान्ति के लिये—पूर्वोक्त प्रतिकार तथा धाराचिकित्सा।

संज्ञाजननार्थ—स्त्रीदुग्ध में चन्दन घिस कर भ्रूप्रदेश पर लेप तथा अन्य बोधन नस्य आदि।

शोथ के लिये—कंगुबीज, मुद्ग, इनका चूर्ण मक्खन में मिलाकर लेप करें। इसके अतिरिक्त अन्य शोथहर लेप का भी प्रयोग कर सकते हैं।

अभ्यंगार्थ—दश पुष्प, बलाद्वयमूल, गुडूची, एरण्डमूल, चतुः-क्षीरीत्वक्, इनका स्वरस पञ्चतैल (एरण्ड, नारिकेल, तिल, करंज, निम्ब) के साथ सिद्ध करें। कल्क के लिये--जटामांसी, मञ्जिष्ठा, मिश्रेया, कन्यासार, अश्वगन्ध, शताह्वा, कुन्दुरु लेवें।

आभ्यन्तर प्रयोगार्थ—'दशमूल घृत' देवे।

व्रण हो जाने पर--व्रण के उपचार करें। एरण्डपल्लव, तिल, इन्हें शीतल जल में पीसकर लेप करें। इससे शनैः शनैः व्रण में उत्तेजना पैदा होगी और व्रण-पीड़ा शान्त होगी। इसका यह कार्य प्रत्युत्तेजन के (Counteriritation) सिद्धांत से होता है।

पूर्वोक्त संतर्पण घृत भी पीड़ाशान्ति के लिये तथा शोथ के लिये हितकर होता है। इस घृत से व्रण का रोपण भी होता है।

सर्वाङ्गरुजा के लिये--३ दिन तक शुद्ध घृत की धारा देनी चाहिये।

अब उपद्रवों की शान्ति के लिये पूर्वोक्त आधुनिक चिकित्सा भी कर सकते हैं।

६—बाह्वी मर्म—बाहुमध्य में 'बाह्वी' नामक मर्म है। यह शिरा मर्म है और इसकी गणना वैकल्यकर मर्मों में है। इसकी मोटाई अर्धाङ्गुल अर्थात् ½ इञ्च है। यहां पर वेध होने से रक्तक्षय से बाहुशोष हो जाता है।

"बाहुमध्ये बाह्वी नाम मर्म, तत्र शोणितक्षयात् बाहुशोषः।"

(सु० शा० ६)

रचना—इसका स्थान बाहुमध्य का अग्रभाग है। इस मर्म से बाह्वीधमनी अन्तर्बाहुका सिरा, बहिर्बाहुका सिरा और मध्य प्रकोष्ठिका नाड़ी के स्थान का ग्रहण होता है। इस मर्म की बनावट में निम्न अङ्ग जुड़ते हैं—

(१) बाहीधमनी (Brachial Artery)
(२) ,, सिरा (,, vein)
(३) मध्य प्रकोष्ठीया नाड़ी (Median nerve)
(४) अन्तःप्रकोष्ठिका नाड़ी (Ulnar nerve)
(५) बहिःप्रकोष्ठिका नाड़ी (Radial nerve)
(६) द्विशिरष्का पेशी (Biceps brachei muscles)

नोट—सिरा धमनी के वेध से होने से रक्तक्षयजन्य बाहुशोष और नाड़ी के वेध होने से नाड़ी अभिघात जन्य बाहु शोष (Atrophic paralysis) होता है।

प्रतिकार- संज्ञाबोधन, वेदनोपशान्ति, तथा रक्तस्राव को बन्द करना। इसके अतिरिक्त अभिघातजन्य अन्य उपद्रव की चिकित्सा लक्षण के अनुसार करना चाहिये। ज्वर हो जाने पर—षडंगपानीय आदि ज्वर को दूर करने के लिये औषध देवे। शेष चिकित्सा आणी मर्मवत।

१०—**लोहिताक्ष मर्म**—बाही मर्म से ऊपर और कक्षा संधि से नीचे बाहु के मूल में 'लोहिताक्ष' नामक मर्म है। यह सिरा मर्म है और इसकी गणना वैकल्यकर मर्मों में है। इसकी मोटाई अर्धाङ्गुल अर्थात् $\frac{1}{2}$ इञ्च है। इसका अभिघात होने से रक्तक्षय, पक्षाघात अथवा हाथ का सूखना या कृश होना होता है।

"बाह्वोरूर्ध्वमधः कक्षासन्धेर्बाहुमूले लोहिताक्षं नाम, तत्र लोहितक्षयेण पक्षाघातो बाहुशोषो वा।" (सु० शा० ६)

रचना—इस मर्म स्थान पर कक्षाधरा धमनी (Axillary artery) रहती है। इसके अतिरिक्त इसकी रचना में निम्न अङ्ग जुड़ते हैं—

(१) बाही धमनी (Brachial artery wtih its two vena cometa)
(२) मध्य प्रकोष्ठीया नाड़ी (Median nerve)
(३) अन्तःप्रकोष्ठीया नाड़ी (Ulnar nerve)
(४) उरश्छदा गुर्वी पेशी (Pectoralis major muscle)
(५) ,, लघ्वी ,, (,, minor ,,)

इस मर्म के अभिघात से पक्षाघात तथा बाहुशोष हो जाता है। ये लक्षण नाड़ी के वेध होने से तथा रक्त के अधिक स्राव होने से होते हैं। (रसयोग-सागर के उपोद्घात में इसका अंग्रेजी अनुवाद Sacral plexus किया गया है जो बिल्कुल अशुद्ध है। क्योंकि उक्त अंग शाखा में होता है—श्रोणी में नहीं।)

प्रतिकार—रक्तस्राव को रोकना तथा वेदनाशान्ति एवं संज्ञासंजन के लिये पूर्वोक्त उपायों को करना चाहिये। बृहंण के लिये-पका केला और खण्डशर्करा दूध में उबालकर पीने को देवे।

तृषा के लिये—मिश्री के टुकड़े चूसने को देवे।

वमन शान्ति के लिये—मयूर पंखभस्म खांड के साथ देवे।

१९—**कक्षधर मर्म**—वक्ष और कक्षा के मध्य में कक्षधर मर्म है। यह स्नायु मर्म है। परन्तु वाग्भट ने इसे सिरा मर्म कहा है। इसकी गणना वैकल्य-कर मर्मों में हैं और इसकी मोटाई ½ से १ अंगुल तक अर्थात् १ इञ्च तक है। यहां पर वेध होने से पक्षाघात होता है।

"वक्षकक्षयोर्मध्ये कक्षधरं नाम, तत्र पक्षाघातः।" (सु० शा० ६)

रचना—इसको सिरामर्म कहने की अपेक्षा स्नायुमर्म कहना अधिक उप-युक्त है। इसका स्थान कांख के शिखर में बतलाया गया है। वहां पर महत्त्व का अंग कक्षानुगा नाड़ी प्रवेणी (Brachial plexus) का कक्षादरी भाग स्थित होता है, जिसमें पार्श्विकी, मध्यानुगा और पश्चिमा वेणिकायें (Lateral median and posterior cords) आती है। इनके वेध से पक्षाघात होता है। इसकी रचना में निम्न अङ्ग जुड़ते हैं—

(१) कक्षधरी धमनी (Axillary artery)
(२) " सिरा (" Vein)
(३) उरश्छदा लघ्वी पेशी की कण्डरा।
(४) मध्य प्रकोष्ठीया नाड़ी का मध्य मुण्ड।
(५) अन्तःप्रकोष्ठीया नाड़ी।

नोट—पक्षाघात इस मर्म के अभिघात के अतिरिक्त अन्य मर्मों के अभिघात

में भी होता है। पक्षाघात का सामान्य अर्थ सम्पूर्ण या एक पक्ष याने आधे अङ्ग का घात (Hemiplegia) होता है। परन्तु यहां पर पक्षाघात शब्द इस सामान्य अर्थ में नहीं उपयुक्त हुआ है। यहां पर इसका अर्थ पक्ष की जिस शाखा के मर्म में वेध हुआ है उस शाखा का घात, अर्थात् एकाङ्ग घात (पक्षाश्रित एक शाखा-घात) अभिप्रेत है।

प्रतिकार—पूर्ववत् तथा पक्षाघात की चिकित्सा करनी चाहिये।

तृष्णा के लिये--तरबूजा के फल में एक छिद्र बना ले और उसे खांड से भर दे। बाद उसमें से जल निकाल कर पीने को दें यह उत्तम तर्पक और तृष्णाहर पेय है।

हिक्का के लिये—सहदेवीस्वरस दूध में मिलाकर पिलावे।

आभ्यन्तर प्रयोगार्थ क्वाथद्रव्य—

१	त्रिवृत्	क्वाथ विधि से	घृत	१	कल्क–मधुयष्टि
२	धात्री	क्वाथ कर वस्त्र-	कुष्माण्ड स्वरस	१	त्रिफला
३	गुडूची	पूत कर ले।	शतावरी ,,	१	हरिद्रा, खांड

स्नेहपाक विधि से घृत पाक करें। अग्निवल देखकर उसे प्रयोग करें। यह कक्षधर और विटप दोनों मर्मों के अभिघात पर अच्छा लाभ करता है।

अभ्यङ्गार्थ निम्न तैलपाक करें--

इमली त्वक्	इनका कषाय बनावें		कल्क–सर्जरक्ष, चन्दन
उशीर	दूध	२	कर्पासवीज, रक्तचन्दन
एरण्डमूल	तैल	१	देवदारु, जीरक, लोध्र

स्नेहपाक विधान से तैयार करें। यह तैल लोहिताक्ष मर्म के अभिघात पर भी लाभ करता है।

चतुर्थ अध्याय

(अधःशाखाओं के मर्म)

१—क्षिप्रमर्म—पांव के अंगूठे और समीपवर्ती अङ्गुली के मध्य क्षिप्र नामक मर्म है। यह स्नायु मर्म है। इसकी मोटाई आधा अङ्गुल या ½ इञ्च है

और यह कालान्तर प्राणहर मर्म है। यहां पर विद्ध हुए मनुष्य की मृत्यु आक्षेप से होती है। **"तत्र पादाङ्गुष्ठांगुल्योर्मध्ये क्षिप्रं नाम मर्म, तत्र विद्धस्याक्षेपेण मरणम्।"** (सुश्रुत शा० ६)

रचना—प्रत्यक्ष शारीर की दृष्टि से यह प्रथम शालाकान्तरीय (First Inter Metatarsal) स्थान है। इस स्थान में प्रथम पादांगुली शलाका पृष्ठगा (First Dorsal Metatarsal) धमनी और पुरोजङ्घिका गम्भीरा (Deep Peroneal Nerve) नाड़ी की अङ्गुष्ठ मूलगा शाखा, ये दो महत्त्व के अङ्ग होते हैं। इस मर्म के वेधन से आक्षेप नामक रोग से मृत्यु होती है। आक्षेप से 'कनवल्सन' (Convulsion) और धनुस्तम्भ (Titanus) दोनों का ग्रहण होता है। ये दोनों रोग रक्तस्रावाधिक्य और अभिघात के कारण हुआ करते हैं। इस के सम्बन्ध में ऊर्ध्व शाखा गत क्षिप्र वर्णन में कहा जा चुका है। इस की रचना में अन्य निम्न अङ्ग जुड़ते हैं:—

१—पादांगुष्ठापकर्षिणी और पादांगुष्ठ सङ्कोचिनी ह्रस्वा की सम्मिलित शाखाएँ। (Combined Tendon of Abductor Hallucis and Flexor Hallucis Brevis)

२—प्रथमाङ्गुलीय सामान्य नाड़ी का विस्तार (Bifercation of First Common Digital Nerve)

३—प्रथम पादतलगा पृष्ठगा धमनी का प्रसार (Bifcreation of First Dorsal Metatarsal Artery)

प्रतिकार—शाखा के क्षिप्र मर्माभिघात के समान।

चित्र २

(अधःशाखा के मर्म)

(१) क्षिप्रमर्म

१—पादाङ्गुष्ठ सङ्कोचिनी ह्रस्वा और पादाङ्गुष्ठापकर्षिणी की सयुक्त कण्डराओं का पार्श्वभाग

२—पादाङ्गुली के प्रथम नाड़ी का प्रसार

३—प्रथम पादाङ्गुली शलाकीय पृष्ठगा धमनी का प्रसार।

(२) तल हृदय मर्म

१—पादतल धानुषी धमनी का चाप।

२—पादतलगा नाड़ियों की शाखाएँ।

३—पादाङ्गुष्ठापकर्षिणी पेशी का शिर।

४—पादतल चतुरस्रा पेशी।
५—पादाङ्गुली-सङ्कोचिनी ह्रस्वा पेशी।

(३) कूर्च मर्म

१—पादाङ्गुली प्रसारिणी ह्रस्वा।
२—पादपृष्ठिका धमनी।
३—पादाङ्गुली-प्रसारिणी दीर्घा की कण्डरा।
४—पुरोजङ्घिका नाड़ी गम्भीरा की शाखाएँ।
५—पादाङ्गुष्ठप्रसारिणी कण्डरा दीर्घा।
६—पुरोजङ्घिका कण्डरा।
७—पादाङ्गुली मूल शलाकीय धमनी पृष्ठगा।
८—पादाङ्गुली-प्रसारिणी ह्रस्वा कण्डरा

(४) आणि मर्म

१—महाजानुका धमनी की मांस पेशी-संधायिनी शाखा।
२—और्वी नाड़ी।
३—और्वी चतुरस्रा पेशी।

(५) ऊर्वी मर्म

१—और्वी उत्ताना सिरा (दीर्घा-ह्रस्वा)।
२—और्वी नाड़ी की शाखा।

(६) कूर्च मर्म

१—जङ्घापुरोगा कण्डरा।
२—पादतलिका स्नायुपट्टिका

(७) गुल्फ मर्म

१—जङ्घास्थिबन्धिनी स्नायुपट्टिका
२—पादसन्धिबन्धिनी अग्रिमा।
३—कूर्चसन्ध्यन्तरीय स्नायु।
४—वलयिका।
५—पादसन्धिबन्धिनी पश्चिमा।
६— " बाह्या।
७—कूर्चान्तरीया स्नायु।

(८) इन्द्रबस्ति मर्म

१—जङ्घापिण्डिका कण्डरा।
२—जङ्घापृष्ठगा धमनी।
३—जङ्घापिण्डिका तृतीया।
४—जङ्घिका नाड़ी।
५—बहिर्जङ्घिका धमनी।
६—जङ्घापिण्डिका लघ्वी।

(९) जानु मर्म

१—जान्वस्थि।
२—सन्धिबन्धनी कोष
३—जानुबन्धिनी स्नायु।
४—जंघाबन्धिनी स्नायु।

(१०) लोहिताक्ष मर्म

१—और्वी सिरा (धमनी के मध्यपार्श्व में)
२—और्वी धमनी।
३—और्वी नाड़ी।

(११) विटप मर्म

१—शुक्र नाड़ी और कलाएं (नाड़ी और रक्त वाहिनियों के साथ)
२—शुक्रवाही नाली।
३—वृषणगा धमनी।
४— ,, सिरा।
५— ,, नाड़ी।

२—तल हृदय मर्म—मध्यमाङ्गुली की रेखा के ऊपर पादतल के मध्य में तल हृदय नामक मर्म है। यह मांस मर्म है और इसकी मोटाई आधी अङ्गुल या ½ इञ्च है। इसकी गणना कालान्तर प्राणहर मर्मों में है। यहाँ पर विद्ध होने से (मनुष्यों की) वेदनाओं से मृत्यु होती है।

"मध्यमाङ्गुलीमनुपूर्वेण मध्ये पादतलस्य तलहृदयं नाम, तत्रापि रुजाभिर्मरणम्। (सु० शा० ६)।

मध्यमाङ्गुलीमनुलक्षीकृत्य क्रमेण पादतलस्य मध्ये तलहृदयं, मांसमर्मैदमर्धाङ्गुलं कालान्तरप्राणहरं च।" (डल्हण)।

रचना—प्रत्यक्ष शारीर की परिभाषा में तलहृदय पादतल-मध्य-भाग (Centre of the Planterside) है। इसमें पदतलघानुषी (Lateral Planter) धमनी और पादतलीया वाह्या और अभ्यंतरा नाड़ी (Medial and Lateral Planter nerve) ये दो महत्व के अङ्ग होते हैं। इन अङ्गों की रक्षा करने के लिये इनके ऊपर बड़ी मज़बूत दीर्घ पादतलिका स्नायु (Long Planter Ligament) का आवरण होता है। इसके अतिरिक्त इसकी रचना में निम्न अङ्ग जुड़े होते हैं।

(१) पादाङ्गुष्ठापकर्षिणी पेशी का तिरश्चीन शिर (Oblique head of the Abductor Hallucis muscle)

(२) पादतल चतुरस्रा पेशी (Quadratus Planter muscle)

(३) पादाङ्गुली संकोचिनी ह्रस्वा (Flexor Digitorum brevis)

इस मर्म पर अभिघात होने पर वेदनाजन्य स्तब्धता से मनुष्यों की मृत्यु होती है। इसका वर्णन पहले हो चुका है।

प्रतिकार—ऊर्ध्व शाखा के तल हृदय के समान।

३—कूर्च मर्म—क्षिप्र के ऊपर दोनों ओर कूर्चनामक मर्म है। यह स्नायु मर्म है और वैकल्यकर मर्मों में इसकी गणना है। इसकी दीर्घता चार अङ्गुल या ४ इञ्च है। यहां पर वेध होने से पांव में टेढ़ापन या कम्पन होता है।

"क्षिप्रस्योपरिष्टादुभयतः कूर्चोनाम, तत्र पादस्य भ्रमणवेपने भवतः। (सु० शा० ६)।

इसपर डल्हणाचार्य ने इस प्रकार टीका की है—

'उपरिष्टादित्यत्र द्व्यङ्गुले इति शेषः। उभयत इत्यादि ऊर्ध्वमधश्च, तस्य कूर्च इति नाम, 'विद्ध' इति शेषः स्नायुमर्मेद वैकल्यकरं चतुरङ्गलश्च।"

रचना—प्रत्यक्ष शारीर की दृष्टि से इस मर्म में कूर्च शलाका की स्नायुओं (Tarso-metatarsal and Inter-tarsal Ligament) जैसे (Cononavecular, Cuboidonevecular Long Planter ele.) का समावेश होता है। इनके ऊपर आघात होने से पांव की कमान (Arch) कमजोर होकर कम्पन भ्रमण जैसे समतलपाद (Flat Foot) इत्यादि विकार होते हैं, इनके अतिरिक्त इसकी रचना में निम्न अङ्ग जुटते हैं:—

(१) पादाङ्गुली प्रसारिणी ह्रस्वा (Extensor Digitorum Brevis)
(२) पाद पृष्ठिका धमनी (Dorsal Pedis Artery)
(३) पादाङ्गुली प्रसारिणी दीर्घा की कण्डरा (Tendon of Extensor Digitorum Longus)
(४) बहिःजंघिका गम्भीरा नाड़ीकी शाखायें (Branches of Deep Peroneal Nerve)
(५) पादाङ्गुष्ठ प्रसारणी दीर्घा की कण्डरा (Tendon of Extensor Hallucis Longus)
(६) बहिःजंघिका त्रिशिरष्का की कण्डरा (Tendon of Peroneal Tertiry)
(७) पादतल पृष्ठगा धमनी (Dorsal Inta-tarsal Artery)
(८) पादांगुली प्रसारिणी ह्रस्वा की कण्डरा।

प्रतिकार—ऊर्ध्वशाखागत कूर्चवत् है।

४—कूर्चशिरमर्म—गुल्फ सन्धि के नीचे दोनों ओर कूर्चशिर नामक मर्म है। यह भी स्नायुमर्म है और वैकल्यकर मर्म है इसकी मोटाई एक अङ्गुल

या १ इञ्च है। यहां पर वेध होने से, पीड़ा और सूजन होती है।

"गुल्फसंधेरुभयतः कूर्चशिरो नाम, तत्र रुजाशोफौ
(सु० शा० ६)।

इदमपि स्नायुमर्म, एकाङ्गुलं वैकल्यकरञ्च। (डल्हण)

रचना—इस मर्म से वहिःपार्श्विक और अन्तःपार्श्विक स्नायुओं (Deltoid Ligaments, Talo Calcaneal and Calconeo Febular Ligament) का बोध होता है। इनके ऊपर आघात होने से गुल्फ संधि में पीड़ा तथा सूजन आ जाती है और उचित प्रतिकार के अभाव में अङ्ग विकृति आ जाती है। ऊपर कहे हुए अङ्गों के अतिरिक्त इसकी रचना में निम्न अङ्ग जुड़ते हैं।

(१) जंघा पुरोगा की कण्डरा (Tendon of the Tibialis Anterior)

(२) कंकणिका स्नायु (Annular Ligament)

नोट—यहां पर अधिक पीड़ा होने का कारण पूयभाव का संक्रमण (Sepsis) है, जो वहां के कण्डरा कञ्चुकी में फैलकर संघातिक शोथ उत्पन्न कर देते हैं।

प्रतिकार—शाखा (उर्ध्वा) गत कूर्च शिर के समान।

५—गुल्फ मर्म—पांव और जंघा के संयोग पर गुल्फ नामक मर्म है। यह संधि मर्म है और इसकी गणना वैकल्यकर मर्मों में है। इसका प्रमाण दो अङ्गुल या २ इञ्च है। यहां पर चोट लगने से पीड़ा, पांव में जकड़न, अथवा लंगड़ापन होता है।

'पाद जंघयोः संधाने गुल्फो नाम, तत्र रुजः स्तब्धपादता खञ्जता वा।" (सु० शा० ६)।

सन्धिमर्मेदं द्व्यङ्गुलप्रमाणं वैकल्यकरं च। (डल्हण)।

रचना—गुल्फ से गुल्फ सन्धि का बोध होता है। इसे अंग्रेजी में (Ankle Joint) कहते हैं, यही मर्म का स्थान है। इसमें अन्तर्जङ्घास्थि और वहिःजंघास्थि का नीचे का जोड़ (Tibio-Fibular Articulation)

तथा इन दोनों कूर्च शिरास्थि के साथ का जोड़ का समावेश है। गुल्फ मर्म पर अभिघात होने से प्रायः अस्थिभंग या संधिविश्लेष (Fracture or Dislocation) होता है, जिससे पीड़ा स्तब्धता तथा लंगड़ापन इत्यादि—उत्पन्न होता है। इसकी रचना में निम्न अङ्ग जुड़ते हैं।

(१) गुल्फ सन्धिबन्धनी चार स्नायुएँ-(Medial Malleolus, Anterior, Longus, Deltoid Ligament, Posterior Ligament)

(२) गुल्फत्रिकोणिका (Tarsal Articulation)

(३) पादसंधिबन्धिनी अग्रिमा स्नायु (Anterior Talo Fibular Ligament)

(४) जंघास्थि (Fibula)

(५) जंघास्थि-बंधिनी पश्चिमा (Posterior Talo Calceneal Ligament)

(६) अनुजंघा पार्ष्णिबंधिनी स्नायु (Fibulo Calceneal Ligament)

(७) पादसन्धिबन्धिनी पार्श्वस्था (Lateral Talo Calceneal Ligament)

प्रतिकार— ऊर्ध्व शाखा के मणिबन्ध के समान।

६—इन्द्रबस्तिमर्म—जङ्घा में एड़ी की ओर इन्द्रबस्ति नामक मर्म है। यह मांसमर्म है और इसकी मोटाई आर्धाङ्गुल है। यह पार्ष्णि से १३ अङ्गुल पर स्थित है और कालन्तरप्राणहर मर्मों में इस की गणना है। भोज ने इसका प्रमाण दो अंगुल बतलाया है। सुश्रुत चिकित्सा स्थान में इन्द्रबस्ति का पार्ष्णि से अन्तर तेरह अंगुल निर्देश किया है। इस प्रकार उक्त अन्तर के अनुसार जंघा की पिण्डली (Calf) इस मर्म का स्थान प्रतीत होता है। इसका मांस मर्म होना भी इस स्थान का समर्थन करता है। पिण्डली वह स्थान है, जहां जंघा का घेरा सबसे अधिक है। यह स्थान मांसल है और ठीक पार्ष्णि से १२ या १३ अंगुल के अन्तर पर है। यहां पर वेध होने से रक्तस्रावजन्य क्षय से मृत्यु होती है।

"पार्ष्णि प्रति जंघामध्ये इन्द्रबस्तिर्नाम, तत्र शोणितक्षयेण मरणं"

(सु. शा. ६)।

मांसमर्मेदमर्धांगुलं पार्ष्णि प्रति त्रयोदशांगुले स्थितं, कालान्तर-प्राणहरञ्च। भोजस्तु द्व्यंगुलप्रमाणमाह।" (डल्हण)

रचना—पिण्डली में जंघा पिण्डिका गुर्वी (Gastronemius) लघ्वी (Soleus) और तृतीया (Plantaris) ये तीन पेशियां होती हैं। (इदं च पेशीत्रयं जंघापिण्डिकेति पिण्डिकेति वा कथ्यते। प्र. शा.) इन पेशियों के पीछे बहिर्जंघिका (Peroneal) और पश्चिम जङ्घिका (Posterior tibial) धमनियाँ तथा पश्चिम जंघिका नाड़ी (Tibial nerve) होती है। यह मांस मर्म विद्ध होने से उपर्युक्त धमनियों के कटने की सम्भवना रहती है और जब वे कट जाती हैं तब रक्तस्राव अत्यधिक होता है और उससे मृत्यु तक होने की सम्भावना रहती है। रसयोग सागर के प्रस्तावना में इन्द्रवस्ति से (Popliteal Fossa) का ग्रहण किया गया है। परन्तु यह स्थान जानुसंधि के पीछे होता है और जानुसन्धि पार्ष्णि गुल्फ से १८ अंगुल पर होती है (अष्टादशांगुला जंघा-शु. प्र. ३५)। इन्द्रवस्ति एड़ी से केवल १३ अंगुल के दूरी पर होने से उसे पोप्लीटीयल फोसा मानना उचित नहीं प्रतीत होता। इस के अतिरिक्त वहां पर जानुमध्य का परिणाह और इन्द्रवस्ति का परिणाह भिन्न २ निर्दिष्टि है। इस लिये जानु मध्य में इद्रवस्ति पृथक् स्थान मालूम होता है। इस मर्म की रचना में उपर्युक्त अङ्ग जुड़ते हैं।

प्रतिकार— ऊर्ध्वशाखा के इन्द्रबस्ति के समान।

७—जानु मर्म—जंघा और उसके संयोग पर जानु नामक मर्म है। यह सन्धि मर्म है और वैकल्य कर मर्मों में इसकी गणना है। इसका प्रमाण ३ अङ्गुल या ३ इञ्च है। यहां पर चोट लगने से लंगड़ापन होता है।

"जङ्घोर्वोः सन्धाने जानु नाम, तत्र खञ्जता।" (सु. श. ६) **संधि मर्मेदं त्र्यङ्गुल प्रमाणं वैकल्य करं च। (डल्हण)"**

रचना—इस मर्म से जानु संधि (Knee joint) का बोध होता है। इसकी रचना में निम्न अङ्ग जुड़ते हैं:—

(१) दृढ़ स्नायु कोष (Articular Capsule)

(२) सन्धि को दृढ़ करने वाली चार स्नायुएँ—

(क) जानुकपाल बंधिनी (Ligmentum Patellae) (ख) जानुपृष्ठगा पश्चिमा (Oblique Popliteal Ligament) (ग) अन्तः पार्श्विका (Medeal Meniscus) (घ) वहिः पार्श्विका (Lateral Meniscus) (ङ) जानुस्वस्तिके द्वे (Ānterior & Fosterior Crucial Ligament)

इसके अतिरिक्त जंघा और जानु के सुदृढ़ बन्धन के लिये अनेक स्नायुयें इसमे सन्नद्ध हैं। जैसे (I) Tibial Colatral Ligament) (II) Fibular Colatral Ligament (III) Transverse Ligament (IV) Coronary Ligament (VI) Arculo Popliteal Ligament

इस मर्मपर अभिघात होने से स्नायुयें भंग हो जाती हैं जिस से मनुष्य लंगड़ा हो जाता है ।

प्रतिकार—कूर्पर मर्माभिघात के समान ।

८—अणिमर्म—जानु से ३ अंगुल ऊपर दोनों ओर आणी नामक मर्म है। यह स्नायुमर्म है और इसकी मोटाई आधा अंगुल अर्थात $\frac{1}{2}$ इञ्च है । यह वैकल्यकर मर्म है, यहां पर वेध होने से सूजन की वृद्धि और पैर में स्तब्धता (जकड़न) होती है ।

"जानुन उर्ध्वमुभयतस्त्र्यङ्गुलम् आणी नाम मर्म, तत्र शोफाभिवृद्धिः स्तब्धता च।" (सु० शा० ६)।

स्नायुमर्मंदमर्धाङ्गुलं वैकल्यकरं च । (डल्हण)

रचना—आणी मर्म से चतुःशिरष्का और्वी (Quadriceps Femoris) पेशी की कण्डरा जो जानु कपालिका में संसक्त है, उसका बोध होता है । इस मर्म की रचना में निम्न अङ्ग भाग लेते हैं:—

(१) उरुदण्डिका (Rectus Femoris)

(२) उरुप्रसारिणी अन्तःस्था (Vastus Intermedius)

(३) उरुप्रसारिणी पार्श्वस्था (Vastus Lateral)
(४) ,, मध्यस्था (Vastus Medius)
(५) जानुकोष कर्षिणी पेशियों को सम्पुष्ट करने वाली धमनियों की शाखायें।
(६) औंर्वी नाड़ी (Femoral Nerve)

प्रतिकार—उर्ध्व शाखावत्

९-ऊर्वी मर्म—ऊरु के मध्य में ऊर्वी नामक मर्म है। यह सिरा मर्म है और वैकल्यकर मर्मों में इसकी गणना है, इसकी दीर्घता एक अंगुल या १ इञ्च है। यहां पर अभिघात होने से रक्तक्षय के कारण पैर सूख जाते हैं।

ऊरुमध्ये ऊर्वी नाम, तत्र शोणितक्षयात् सक्थिशोषः।" (सु०शा०६)

सिरामर्मदमेकाङ्गुल वैकल्यकर च। (डल्हण)

रचना—प्रत्यक्ष शारीर की दृष्टि से यदि ऊरु की रचना का परीक्षण किया जाय तो इस मर्म से 'संव्यूहन प्रणाली' (Adductor Canal) का बोध होगा। इस प्रणाली में औंर्वी धमनी, सिरा और नाड़ी (Femoral Artery, vein & Nerve) ये महत्व के अङ्ग दीख पड़ते हैं। धमनी या सिरा के वेध से रक्तक्षयजन्य और नाड़ी के वेध से तज्जन्य सक्थिशोष होना सर्वथा संभव है। ये तीनों अङ्गों के अति सन्निकट निवास से तीनों का एक साथ विद्ध होकर भी उक्त परिणाम संभव है।

प्रतिकार—ऊर्ध्व शाखागत बाह्वी मर्माभिघात में वर्णित सभी प्रतिकार इसमें भी हितकर होते हैं।

१०-लोहिताक्ष मर्म—ऊर्वी से ऊपर वंक्षण सन्धि से नीचे ऊरु के मूल में लोहिताक्ष नामक मर्म है। यह सिरा मर्म है। इसकी गणना वैकल्यकर मर्मों में है। इसकी दीर्घता अर्धाङ्गुल या ½ इञ्च है। यहां पर चोट लगने से रक्तक्षयजन्य पक्षाघात अथवा पैर की कृशता होती है।

"ऊर्व्या ऊर्ध्वमधो वंक्षणसंधेरूरुमूले लोहिताक्षं नाम, तत्र लोहितक्षयेण पक्षाघातः शक्थिशोषो वा।" (सु० शा० ६)

सिरामर्मैदमर्धाङ्गुलं वैकल्यकरं च।" (डल्हण)

रचना—उपर्युक्त वर्णन के अनुसार यह मर्म और्वी त्रिकोण (Femoral Triangle) प्रतीत होता है। इस त्रिकोण में ऊरु मर्म के समान सब महत्त्व के अङ्ग होते हैं। जैसे और्वी धमनी, सिरा, नाड़ी इत्यादि। इसी से इसके वेध होने पर भी वही परिणाम होता है, जो ऊर्वी मर्म के होने पर होता है।

प्रतिकार—ऊर्ध्वशाखागत लोहिताक्ष मर्म के समान।

११—विटप मर्म—वंक्षण और वृषण के मध्य में विटप नामक मर्म है। यह स्नायु मर्म है। इसकी गणना वैकल्यकर मर्मों में है। इसकी मोटाई एक अङ्गुल या एक इञ्च है। यहां पर चोट लगने से षण्डता या अल्प शुक्रत होती है।

"वंक्षणवृषणयोरन्तरे विटपं नाम, तत्र षाण्डयमल्पशुक्रता वा भवति।" स्नायुमर्मैदकांगुलं वैकल्यकरं च।" (डल्हण)

रचना—उपर्युक्त वर्णन के अनुसार यह मर्म 'वंक्षण सुरंगा' (Inguinal Canal) प्रतीत होता है। यह सुरंगा स्नायुओं से बनी है और उसमें से होकर वृषण सम्बन्धिनी तथा शुक्रवह नाड़ी (Spermatic Cord) भीतर की ओर गई है। इसके अतिरिक्त इसकी रचना में निम्न अङ्ग जुड़ते हैं—(१) शुक्रवह नाड़ी और उसे आच्छादित करने वाली कला, (२) शुक्रप्रपिके (Ductus Deferens) अपनी धमनियों के साथ। (३) अनुवृषणिक धमनी और सिरायें तथा नाड़ियां (Testicular Artery, Vein & nerve)। अतः शुक्रवह नाड़ी पर आघात होने से वह नाड़ी बन्द हो जायगी और वृषण में उत्पन्न हुआ शुक्र शिश्न में नहीं जा सकेगा। दोनों के ऊपर चोट लगने से षण्डता उत्पन्न होगी। इसमें मैथुन का असामर्थ्य न होकर प्रजोत्पादन का असामर्थ्य होता है। एक के ऊपर चोट लगने से केवल एक ही वृषण का शुक्र मैथुन के समय निकल सकेगा, अतः अल्पशुक्रता होगी।

नोट—इस मर्म को स्त्रियों में भी इसी प्रकार समझेंगे, परन्तु इसका स्थान-भेद हो जायगा। स्त्रियों में इसका स्थान वृषण के बदले वीजकोष (Ovary) होगा, जो गर्भाशय के पार्श्व में दोनों ओर स्थित होता है।

प्रतिकार—इसकी चिकित्सा कक्षधर मर्माभिघात के समान होगी।

शाखाश्रित मर्मों का परीक्षण—शस्त्र कर्म की दृष्टि से धमनी, नाड़ी और बड़ी सिरायें, ये महत्त्व के अङ्ग होते हैं। यदि शाखाश्रिति मर्मों का अनुसन्धान इन महत्त्व के अङ्गों का दृष्टि से किया जाय तो कहना पड़ता है कि यद्यपि शरीर वर्णन में अन्यत्र नही, तथापि मर्मों के निमित्त शाखाओं के इन प्रधान अङ्गों का स्थान चिकित्सकों को मालूम होता है। जैसे—क्षिप्र, तलहृदय, कूर्चशिर, इन्द्रबस्ति, आणी, ऊरु, लोहिताक्ष और वाहुका कक्षाधरः ये सब मर्म शाखाओं के इन अङ्गों के भागों के नीचे से ऊपर तक के पड़ाव हैं।

सिरामर्म—पहले बताया जा चुका है कि मर्म का नाम उस की शरीर-रचना सूचित करता है अर्थात् सिरा मर्म से यह सूचित किया जाता है कि इस मर्म की रचना में सिरा का प्राधान्य है। शाखाओं में ऊरु, लोहिताक्ष, कक्षधर, ये सिरा मर्म हैं। यदि सिरा का आधुनिक अर्थ भेन (Vein) लिया जाय तो पक्षाघात या सक्थिशोष शिरामर्म के बेधन से उत्पन्न होने की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रत्यक्ष शारीर की दृष्टि से यदि इन मर्मों की रचना देखी जाय तो इनमें धमनी (Artery) सिरा (Vein) और नाड़ी (Nerve) ये ये तीनों अंग उपस्थित रहते हैं। आधुनिक दृष्टि से पक्षाघात या एकाङ्गवात या सक्थिशोथ; ये सब विकार प्रायः नाड़ी के बेधन से होती हैं। इन स्थानों में नाड़ी होती है। इसलिये जैसा कि अमरकोष में लिखा है कि-'नाडी तु धमनी सिरा' के अनुसार सिरा सब तीनों का बोधक हैं। आयुर्वेद के अन्य स्थलों पर भी सिरा शब्द तीनों के लिये व्यवहृत हुआ है, अतः शिरा शब्द से तीनों का ग्रहण करना उचित ही है।

पञ्चम अध्याय

(मध्य शरीर के मर्म)

(उदर प्रदेश के मर्मों का वर्णन)

१—**गुद मर्म**—मल और वायु को निकालने वाला बड़ी आँतों से जुड़ा हुआ 'गुद' नामक मर्म है। यह मांस मर्म है और सद्यःप्राणहर मर्मों में इसकी गणना है। इसकी दीर्घता चार अङ्गुल अर्थात् ४ इञ्च है। यहां पर अभिघात

होने से मनुष्य की तत्काल मृत्यु होती है।

"तत्र वातवर्चोनिरसनं स्थूलांत्रं प्रतिबद्धं गुदं नाम मर्म, तत्र सद्यो मरणम्।" (सु० शा० ६)।

'मांसमर्मेदं चतुरङ्गुलं सद्योघातो च (डल्हण)।

रचना—गुद मर्म से यहां पर गुदनलिका (Anal Caual) और गुदद्वार (Anus) का ही ग्रहण करना चाहिये। मलाशय (Rectum) का ग्रहण करना उचित नहीं प्रतीत होता, क्योंकि यहां उस (गुद) की विशेषता में **'वातवर्चोनिरसनं'** कहा गया है, वर्चोधारक नहीं। चरक संहिता में गुदा के दो विभाग **'उत्तर गुद'** और **'अधर गुद'** किये गये हैं। उसकी टीका में चक्रपाणिदत्त ने लिखा है—**'उत्तरगुदो यत्र पुरीषमवतिष्ठते, येन तु पुरीषं निष्क्रामति तदधरगुदम्'** (शा० ७–१०)। अतः यहां गुद से चरकोक्त अधर गुद का ही ग्रहण युक्तियुक्त है और यही अभिप्रेत भी प्रतीत होता है। इस मर्म के निर्माण में निम्न अंग जुड़ते हैं:—

(१) गुदसंकोचिनी बाह्या पेशी (External Sphincter Ani Muscle)

(२) गुदसंकोचिनी आभ्यन्तरी (Internal Sphincter Ani Muscle)

(३) पायुधारणी (Levator Ani)

(४) अधर गुदान्तिका नाड़ी चक्र (Inferior Haemorrhoidal Nerve Plexus)

(५) अधर गुदान्तिका धमनी और सिरा (Inferior Haemorrhoidal Artery& Vein)

गुद मर्म के ऊपर आघात होने से तत्काल मृत्यु स्तब्धता (Shock) के कारण हो सकती है और यदि वेधन गम्भीर हुआ तो उससे उदरावणरशोथ (Peritonitis) उत्पन्न होकर उससे मृत्यु हो सकती है। गुद को इतना महत्त्व देने का एक कारण और है कि प्राचीन काल में जैसे शिर को शरीर का मूल मानने की कल्पना का वर्णन उपलब्ध होता है जैसे—**'उर्ध्वमूलमधःशा-**

स्मृषयः पुरुषं विदुः । मूलप्रहारिणस्तस्माद् रोगान् शीघ्रतरं जयेत् ।' (अ० द० उ० २४)। वैसे ही गुदा को भी शरीर का मूल मानने का वर्णन उपलब्ध होता है और इसी के आधार पर अनुवासन बस्ति के गुण वर्णन में चरक सिद्धिस्थान में कहा गया है कि—"मूले निषिक्तो हि यथा द्रुमः स्यान्नीलच्छदः कोमलपल्लवाढ्यः । काले महान् पुष्प फलप्रदश्च। तथा नरः स्यादनुवासनेन ।" (च० सि० १.)। इसकी टीका में चक्रपाणिदत्त ने लिखा है—'मूलदृष्टान्तेन चानुवासनेन साक्षात्तर्पणीयस्य गुदस्य देहमूलत्वं दर्शयति। उक्तं हि पराशरे—मूलं गुदं शरीरस्य सिरास्तत्र प्रतिष्ठिताः । सर्वं शरीरं पुष्णन्ति मूर्धानं यावदाश्रिताः ।" आधुनिक विचार से इस मर्म पर अभिघात से मृत्यु का कारण नाड़ी और नाड़ीचक्रों (Nerve Supplying to the Muscle & Nerve Plexus) की उत्तेजना जनित स्तब्धता (Shock) हो सकती है।

प्रतिकार—सर्व प्रथम स्तब्धता की पूर्वोक्त चिकित्सा का विधान करें। पश्चात् अभिहत स्थान पर वेदनाहर लेपों का तथा अभिसिञ्चनों का उपयोग करें। संज्ञावबोधनार्थ चरकोक्त संज्ञा संस्थापनीय गण के यथा लाभ औषधों का कषाय बनाकर देवे। एतदर्थ स्त्रीदुग्ध में चन्दन घिस कर मक्खन मिलाकर भ्रू प्रदेश पर लेप करने से भी लाभ होता है।

प्रलाप के लिये—आभ्यन्तर प्रयोगार्थ तगरादि क्वाथ तथा प्रलापान्तक रस का प्रयोग करना चाहिये। शिर पर चतुःक्षीरी वृक्षत्वक्, गुडूची, शतावरीस्वरस में घृत के साथ मंथ कर (प्रत्येक के साथ ७-७ बार) लेप करने से भी लाभ होता है।

तृषा के लिये—चन्दनादि कषाय देवे। **मल शुद्धि के लिये**—साधारण अनुलोमक औषधि यथा हरीतकी को नारिकेल में घीस कर पीने को देवे।

वेदना शान्ति के लिये—अभिहत स्थान पर शतावरी स्वरस और दूध की धारा देना चाहिये। इसके अतिरिक्त अभिहत स्थान की चिकित्सा व्रण शोथवत् तथा व्रण हो जाने पर व्रणवत् करे।

चित्र नं० ३

(उदर, वक्ष और पृष्ठ के मर्म)

(१) गुदमर्म

१—बाह्यगुदसंकोचिनी पेशी ।
२— अधर गुदकनाड़ी चक्र ।
३— उपस्थमूलच्छदा आग्रिमा ।
४—गुदान्तिका अधरा धमनी (सम्ब-द्ध सिराओं के साथ)
५—गुदविस्फारिणी पेशी ।

(२) बस्ति मर्म

१—गविनी ।
२—बस्ति (मूत्राशय) ।

(३) नाभि मर्म

१—आमाशयानुक्रोडिका धमनी तथा सिरा अधरा ।
२—उदरदण्डिका पेशी ।

(४) हृदय मर्म

१—हृदय ।

(५) स्तनमूल मर्म

१ – फुप्फुस का आधार भाग ।

(६) स्तन रोहित मर्म

१—श्वास प्रणाली ।
२—फुप्फुसीया धमनी ।
३— ,, सिरा ।

(७) अपलाप मर्म

१—बाही नाड़ीचक्र ।
२—कक्षानुगा धमनी ।
३— ,, सिरा ।

(८) अपस्तम्भ मर्म

१—प्राणदा नाड़ी ।
२—महामातृका धमनी ।
३—प्रश्वसिनी नाड़ी ।
४—अक्षाधरा सिरा ।

(९) कटिक तरुण मर्म

२—अधिश्रोणिका धमनी ।
२—अधिश्रोणिका धमनी, सिरा वाह
३— त्रिकजघन संधि ।
४— त्रिकजघन संयोजिनी स्नायुपक्षिम

(१०) कुकुन्दर मर्म

१—त्रिकजघन संधि गृध्रसी नाड़ी सहित, पुरोभाग में ।

(११) नितम्ब मर्म

११—१० तथा १२ दश पर्शुकाएँ

(१२) पार्श्वसन्धि मर्म

१— वृक्क के कुहर में जानेवाली रक्त वाहिनियां ।

(१३) बृहती मर्म

१— यकृत तथा प्लीहा के गर्त में जाने-वाली रक्त वाहिनियां ।

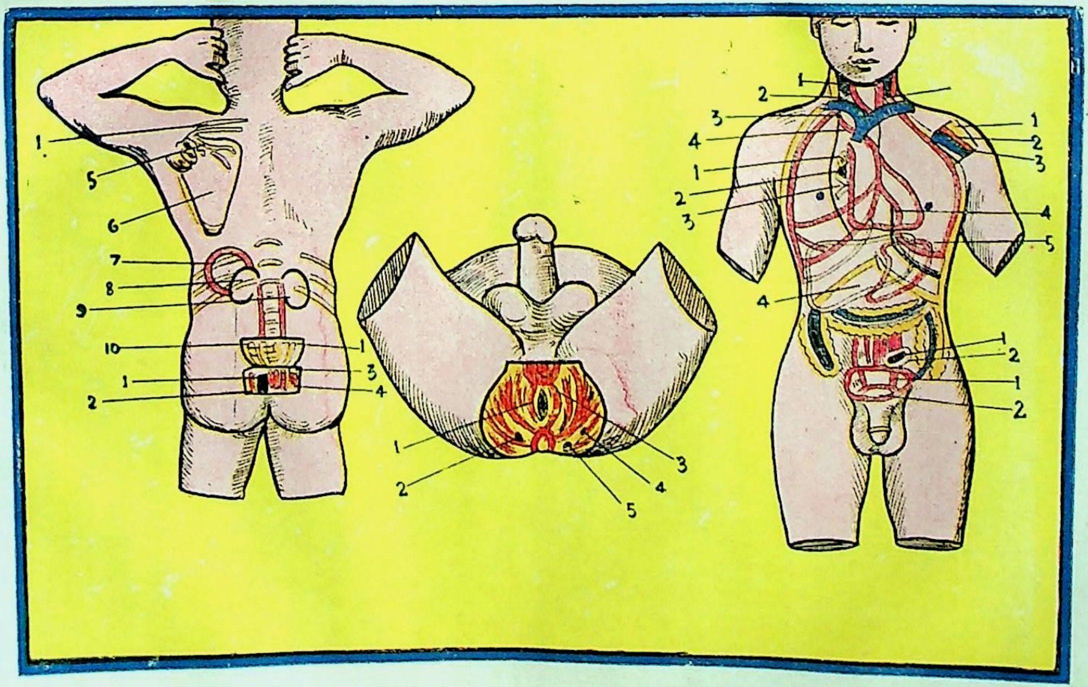
(१४) अंश फलक मर्म

१— अंश फलक ।

(१५) अंश मर्म

१— आक्षांशानुबंधिनी स्नायु ।

मर्म विज्ञान चित्र ३ पृष्ठ ६४



बस्ति मर्म— कटि के भीतर की ओर मूत्र का आधार बस्ति नामक मर्म है। इसकी बनावट में रक्त और मांस अल्प होता है। यह स्नायु मर्म है और सद्यः प्राणहर है। इसकी दीर्घता चार अङ्गुल अर्थात् ४ इञ्च है। यहां पर अभिघात होने से (अश्मरी व्रण के अतिरिक्त) मनुष्य की तत्काल मृत्यु होती है, अश्मरी में भी दोनों ओर भिन्न होने से मनुष्य नहीं बचता, एक तरफ भेद होने से मूत्रस्रावी व्रण होता है, जो यत्नपूर्वक चिकित्सा करने से रोपित होता है।

"अल्पमांसशोणितोऽभ्यन्तरतः कट्यां मूत्राशयो बस्तिर्नाम, तत्रापि सद्योमरणमश्मरीव्रणादृते तत्राप्युभयतो भिन्ने न जीवति, एकतो भिन्ने मूत्रस्रावी व्रणो भवति, स तु यत्नेनोपक्रान्तो रोहति।" (सु०शा०६)

'स्नायुमर्मेदं चतुरङ्गुलं सद्योघाति च।' (डल्हण)।

रचना—यह मर्म मूत्राशय (Urinary Bladder) स्थानीय है। यहां पर इसका और उदरावरण (Peritonium) का सम्बन्ध देखना आवश्यक है। बस्ति के चार पृष्ठ होते हैं। एक ऊर्ध्व, दूसरा अधर, तीसरा और चौथा पार्श्विक पृष्ठ। इनमें से ऊर्ध्व भाग पर उदरावरण लगा रहता है। अधर और पार्श्विक पृष्ठ उदरावरण से रहित (अछूता) होता है। बस्ति मूत्र से परिपूर्ण होने के समय यदि बस्ति प्रदेश पर आघात या चोट लगे तो वह विदीर्ण हो जाती है। वह विदार चारो में से किसी एक पृष्ठ में हो सकता है। बस्ति के ऊर्ध्व पृष्ठ के विदीर्ण होने से मूत्र उदर गुहा में प्रवेश करेगा। इस विदार को उदरान्तरीय (Intra-Peritoneal) विदार कहते हैं। इसके विदीर्ण होने के समय स्तब्धता, पीड़ा इत्यादि तीव्र लक्षण उत्पन्न होकर थोड़े समय में तीव्र उदरावरण शोथ होने से सद्यः मृत्यु हो जाती है। बस्ति का भेद प्रायः इसी प्रकार का होता है। यदि पार्श्विक या अधर पृष्ठ में भेद हुआ तो मूत्र उदर गुहा में न जाकर श्रोणिगुहा में उदरावरण के बाहर फैलता है। इसको उदर बाह्यविदार या भेद (Extra-Peritoneal) कहते हैं। इस प्रकार के विदार से कटि के संयोजक धातुओं में तीव्ररूप का पाक (Suppurative Pelviccellulilis) उत्पन्न होकर पूयमयता या विषमयता से मृत्यु होती है। संक्षेप में जब आगन्तुक कारणों

से वस्ति विदीर्ण होगी तब उदरबाह्य या उदरान्तरीय भेद होगा और दोनों में हा मृत्यु होगी ।

'अश्मरीव्रणादृते' इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि आकस्मिक आघातजन्य, आगन्तुक और शल्यशास्त्रज्ञ से जो नहीं किया गया है; ऐसा व्रण उत्पन्न होने पर ही मृत्यु होती है। अश्मरी का व्रण शल्यशास्त्रज्ञ सोच विचार करके योग्य स्थान में करता है जिससे मूत्र इधर उधर न जाकर सीधा उससे बाहर निकलता है, और परिणाम स्वरूप न उदरगुहा में, न कटिगुहा में विकृति पैदा होती है। 'उभयतो भिन्ने' इत्यादि का अभिप्राय यह है कि अश्मरी निकालने के लिये सावधानी से किया हुआ एक व्रण मुश्किल से भरता है और दो व्रणों का रोपण होना तो असम्भव ही प्रतीत होता है, जिससे इन व्रणों से मूत्र सदा टपकता रहता है। सुश्रुत चिकित्सा स्थान के सातवें अध्याय में अश्मरी का शस्त्रकर्म जिस प्रकार वर्णन किया गया है वह मूलाधार पार्श्विक वस्ति भेदन (Lateral Cystonomy) है। भेदन के समय यदि उचित रूप से सरल भेदन न हुआ और त्वचा आदि धातुएँ अधिक इधर उधर कट गयी तो वस्ति का मूत्र इधर उधर फैल कर श्रोणि गुहा में शोथ (Pelvic Cellulitis) उत्पन्न कर सकता है। दोनों तरफ भेदन करने से इस शोथ की संभावना दुगनी बढ़ जाती है। इसी लिये लिखा है कि 'उभयतो भिन्ने न जीवति'; क्योंकि श्रोणि गुहागत शोथ प्रायः सांघातिक होता है।

इस मर्म की रचना में बस्ति और गविनी (Ureter) दोनों का समादेश होने से दोनों का ग्रहण होता है। इसके अतिरिक्त अधिवस्तिक नाड़ीचक्र (Hypogastric Plexus) से आने वाली पारिवस्तिक नाड़ी चक्र भी इस से संलग्न होता है।

प्रतिकार—इसकी चिकित्सा बहुत ही कठिन है। इस मर्म के अभिघात में यथा शीघ्र ऐसा उपचार करे कि पूयमयता तथा विषमयता न होने पावे। एतदर्थ कुशल चिकित्सक (शस्त्रक्रियाविद्) शस्त्र क्रिया द्वारा मूत्र के इतस्ततः प्रसार को रोके और उसे बाहर निकाल कर शूचि सीवन तथा बन्ध करें। उदरबाह्यभेद तथा उदरान्तरीयभेद की चिकित्सा द्वारा रोगी को बचाने का प्रयत्न करें।

३–नाभिमर्म—पक्काशय और आमाशय के मध्य में सिराओं का उत्पत्ति-स्थान नाभि नामक मर्म है। यह सिरा मर्म है और सद्यः प्राणहर मर्मों में इसकी गणना है। इसकी मुटाई ४ अंगुल अर्थात् चार इञ्च है। यहां पर वेध होने से तत्काल मृत्यु होती है।

"पक्कामाशयोर्मध्ये सिराप्रभवा नाभिर्नाम, तत्रापि सद्योमरणम् (सु० शा० ६)। सिरा मर्मेदं चतुरङ्गुलं सद्योघाती च।" (डल्हण)

रचना—नाभि को सिराओं का प्रभवस्थान गर्भावस्था की दृष्टि से माना गया है। जन्म के पश्चात् नाभि का और सिराओं का कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। नाभि के पीछे उदर गुहा है। उदर में सब महत्व के अङ्ग होते हैं। नाभि के उपर आघात होने से भीतरी महत्व के अङ्गों के ऊ पर उसका परिणाम होकर, उन अंगों के विदीर्ण होने से प्रत्यावर्तन जन्य हृद्भेद से या स्तब्धता से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। यदि किसी नोकीले शस्त्र द्वारा वेधन हुआ हो तो आँत्र में छेद उत्पन्न हो सकता है और उससे मल उदर गुहा में आने के कारण उदरावरण शोथ से मृत्यु हो सकती है। देखा गया है कि जब विषमज्वर या कालाजार के कारण यकृत् और प्लीहा अत्यधिक बढ़ जाती है तब नाभि प्रदेश में या उसके आस पास प्रहार होने से यकृत् या प्लीहा बिदीर्ण होकर रक्तस्राव से या स्तब्धता से रोगी की मृत्यु हो जाती है। सम्पूर्ण उदर के सामने का पृष्ठ भाग मर्म स्थान है; जिस पर चोट लगने से मृत्यु हो सकती है। यहां पर उदर के दो विभाग किये गये हैं—बस्ति भाग और नाभिभाग। बस्तिभाग में जघन कपाल के पूर्वोर्ध्व कूटों (Antirior-supirior-illiacspine) को जोड़नेवाली रेखा के नीचे का भाग आता है और उसके ऊपर का भाग नाभि भाग में आता है। नाभि मर्म की रचना में निम्न अङ्ग जुड़ते हैं—

(१ हृदयाधरिक धमनी, सिरा अधरा (Inferior Epigastricartery Vein)

(२) उदर दण्डिका पेशी (Rectus Abdomenlis muscle)

प्रतिकार—स्तब्धता को रोकने का पूर्वोक्त प्रयत्न करे और वेदना हर

औषधों का प्रयोग करें । शेष चिकित्सा वस्ति मर्म के वेधवत् ।

पीड़ा शान्ति के लिये—समभाग घृत और तेल की धारा देवें । श्वास प्रणाली के कष्ट हो जाने पर-अजवायन, देवदारु, चन्दन, एला, सुगन्धवाला, खश, नागरमोथा, अगर, सौंफ, पित्तपापरा, सोंठ, वासामूल इनका कषाय बना कर खांड और जीरकचूर्ण मिला कर पिलावें । इस के अतिरिक्त—चरकोक्त शोणितास्थापनीय तथा संज्ञास्थापनीय गणों का कषाय आवश्यतानुसार देवे ।

प्रतिकार में सावधानी—उदर प्रदेश के मर्मों के आघात की चिकित्सा में सर्व प्रथम रोगी को शय्या पर पूर्ण विश्राम पूर्वक लेटा कर और प्रामिथक स्तब्धता का पूर्वोक्त प्रतिकार सम्पन्न कर चिकित्सक को चाहिये कि वह पूर्ण सावधानी से रोगी के अभिहत स्थानों की परीक्षा करें और निम्न वातों का निश्चय करें—

(क) उदरावरणान्तरीय रक्तस्राव के लक्षण ।

(ख) रक्त वमन (जो आमाशय विदीर्ण होने का सूचक है)

(ग) स्तब्ध तथा उत्तान उदरस्थिति तीव्रवेदना युक्त, जो आन्त्रक्षत का तत्कालीन परिणाम होता है ।

(घ) वस्तिक्षत के लक्षण

ये अवस्थाएँ ऐसी है जिनमें यदि शीघ्र शस्त्र क्रिया द्वारा उपचार न किया जाय तो रोगी की शीघ्र मृत्यु हो जाती है । अतः उक्त वातों के निश्चय होने पर शीघ्र ही प्रतिकार प्रारम्भ कर दे । क्षण भर भी इस में विलम्ब अत्यधिक होता है । यहां तक कि स्तब्धता की अवस्था में भी शस्त्र क्रिया करने का निर्देश है ऐसी अवस्था में रक्त के संचार—को अक्षुण्ण रखने के लिये तथा हृदय के कार्याव-रोध को रोकने के लिये 'लवण जल' (Saline) का शिरावस्ति पर्याप्त मात्रा में देना आवश्यक है । रोगी को सदा सोष्ण बनाये रखने का प्रयत्न करना चाहिये । वेदना की शान्ति के लिये थोड़ा अहिफेन का प्रयोग भी हितकर होता है । परन्तु इसका प्रयोग बहुत सावधानी से करना चाहिये । केवल अंत्र के संकोच प्रसार को रोकने मात्र की मात्रा में इसका उपयोग हितकर होता है । यदि वमन

होता हो तो वस्ति से मल शुद्धि कर लेना अच्छा है। ऐसी परिस्थिति में कुशल शस्त्रकर्मविद् ही सफलता प्राप्त करते हैं।

उरःप्रदेश के मर्म

१-हृदय मर्म—छाती के दोनों स्तनों के मध्य में अवस्थान किया हुआ आमाशयद्वार के ऊपर स्थित सत्त्व-रज-तम का अधिष्ठान हृदय नामक मर्म है। यह सिरा मर्म है और कमल के मुकुल के समान अधोमुखवाला चार अङ्गुल प्रमाण का सद्योघाती मर्म है।

"स्तनयोर्मध्यमधिष्ठायोरःस्थामाशयद्वारं सत्त्वरजस्तमसामधिष्ठानं हृदयं नाम, तत्रापि सद्य एव मरणम्।" (सु. शा. ६)।

सिरामर्मेति इदं कमलमुकुलाकारमधोमुखं चतुरङ्गुलं च सद्योघाती। (डल्हण)

रचना—यह वही वक्षःस्थ यंत्र है, जिसके संकोच विकास से सम्पूर्ण शरीर में रक्त का परिभ्रमण होता है। (इस कार्य के अतिरिक्त अन्य कार्यों के विवरण के लिये सुश्रुत, शारीर-चतुर्थ-अध्याय घाणेकर टीका में वर्णित हृदय के विवेचन को देखें)। सत्वादि का अधिष्ठान हृदय क्यों कहा गया है यह उपर्युक्त स्थल को देखने से स्पष्ट हो जायगा। हृदय दोनों स्तनों के मध्य में रहता है, किन्तु उसका अधिकांश बाईं ओर होता है। वक्ष के दीवाल के ऊपर उसकी स्थिति निम्न चार बिन्दुओं को मिलाने वाली चार रेखाओं से मालूम (चित्र खींच) कर सकते हैं।

(१) हृदय का अग्र भाग या मुख (Apex)—इसका स्थान बाईं ओर के पञ्चम पर्शुकान्तर स्थान में चूचुक के नीचे उरःफलक की ओर ¾ इञ्च या वक्ष मध्य रेखा से ३¾ इञ्च होता है। इसी स्थान पर दर्शन या स्पर्श से हृदय के अग्र का स्पन्दन प्रतीत होता है। हृदय की विकृतियों में यह स्थान नीचे और बाहर की ओर सरक जाता है। हृदयाग्र (Apex) का स्थानान्तर हृद्विकृति का निश्चित चिह्न है।

(२) दाईं ओर का सातवां उपपर्शुका-उरःफलक संधि।

(३) दाईं ओर उरःफलक की किनारे से $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ इञ्च की दूरी पर तीसरी उपपर्शुका के ऊपर के किनारे पर।

(४) बाईं ओर उरःफलक के किनारे से एक इञ्च दूसरी उपपर्शुका के निचले किनारे पर

अब प्रथम और द्वितीय को इस प्रकार जोड़ें कि रेखा उरःफलक के मध्यभाग और अग्रयंत्र (Xiphoid) के संयोग स्थान में से हो कर चली जावे। यह रेखा हृदय का निचला किनारा बनाती है। पुनः दूसरा और तीसरा विन्दु इस प्रकार से जोड़ो कि चौथे उपपर्शुका पर रेखा का उभार वक्षमध्य में ९.५ इञ्च का हो जाय। इस से हृदय का दायां किनारा बनता है। फिर चौथे और पहले बिन्दु को इस प्रकार जोड़ो कि रेखा का कुछ उभार दाईं ओर हो जावे यह हृदय का बायां किनारा है।

'आमाशयद्वार—' हृदय को आमाशय द्वार स्थित इसलिये कहा गया है क्योंकि वह आमाशय द्वार के बहुत समीप है। हृदय महाप्राचीरा पेशी के ऊपर स्थित रहता है। गले से निकली हुई अन्नप्रणाली हृदय समीपवर्त्ती महाप्राचीरा के छिद्र में से होकर उदरगुहा में प्रवेश करके आमाशय से मिलती है। आमाशय का यह ऊपर का द्वार हृदय के बहुत समीप होता है। दोनों में केवल महाप्राचीरा पेशी का अन्तर होता है। इसी कारण से आधुनिक परिभाषा में भी आमाशय के ऊपर का द्वार हार्दिकद्वार (Cardiac orfice) कहलाता है। इसके अतिरिक्त आमाशय का मोटा भाग, जहां पर अन्न इकट्ठा होता है, हृदय समीप होने के कारण हार्दिक भाग कहलाता है। इस सान्निध्य के कारण ही अधिक भोजन करने पर उसका भार हृदय पर पड़ता है और उसके कार्य में बाधा उत्पन्न होती है। मात्रानुसार भोजन करने का एक लक्षण-'अन्नेन-हृदयाबाधः' इसी सपीपता के कारण होता है।

प्रतिकार—यह सद्योघाती मर्म है, अतः चिकित्सा का अवसर प्रायः नहीं मिलता। अभिघात कम होने पर तज्जन्य वैकल्य तथा रुजा की चिकित्सा संभव है। स्तब्धता तथा रुजा को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। पीड़ाशान्ति

के लिये--घी १ भाग, तैल ½ भाग, लाजा और जीरक ¼ भाग, सबको मिलाकर धारा देदे। संज्ञासंजनन के लिये चन्दन स्त्रीदुग्ध में घीस कर घी मिलाकर भ्रू प्रदेश पर लेप करें। ज्वर के लिये--षडंग पानीय कषाय देदे। शिरासंकोच के लिये--शतावरी घृत देदे। श्वास कास के लिये--जीरक चूर्ण घी के साथ देदे। पथ्य में भात देदे-पर भात बनाने के समय उस में जीरा डालकर पकावे, मण्ड न निकाले और घी के साथ खिला दे। यह पञ्चमूल सिद्ध पेया, निम्बस्वरस, हिंगु, लवण मिलाकर पीने को देवे।

२—स्तनमूल मर्म—स्तनों के नीचे दो अङ्गुल दोनों ओर 'स्तनमूल' नामक मर्म है। यह सिरामर्म दो अङ्गुल प्रमाण वाला कालान्तर प्राणहर मर्म है। यहां पर चोट लगने से वक्ष (छाती) कफसे भर कर कास श्वास से मृत्यु होती है।

"स्तनयोरधस्तात् द्व्यङ्गुलमुभयतः स्तनमूले नाम मर्मणी, तत्र कफपूर्णकोष्ठतया श्वासकासाभ्यां म्रियते। "(सु० शा० ६)

स्तनमूले सिरामर्मणी द्व्यङ्गुले कालान्तरप्राणहरे च।" (डल्हण)

रचना—इस मर्म से फुफ्फुस का आधार भाग (Base of the Lungs का बोध होता है। उक्त सूत्र में कोष्ठ शब्द उस गुहा स्थित फुफ्फुस के लिये आया हुआ है। कोष्ठ की परिभाषा निम्न प्रकार से शास्त्रों में वर्णित है—

"स्थानान्यामग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च।
हृदुण्डुकः फुफ्फुसश्च 'कोष्ठ' इत्यभिधीयते॥"

आमाशय, अग्न्याशय, मूत्राशय, रुधिराशय, हृदय उण्डुक और फुफ्फुस ये सब कोष्ठ के अन्दर के अवयव है। अतः इस मर्म पर अभिघात होने से अभिघातजन्य उरस्तोय तथा श्वसनक (Plurisy तथा Pneumonia) नामक व्याधि उत्पन्न होकर श्वास तथा कास कष्ट से मृत्यु होना संभव है।

प्रतिकार के लिये—तीव्र पीड़ाजन्य स्तब्धता को रोकने के लिये पूर्वोक्त वेदनापह तथा संज्ञाबोधक औषधों का प्रयोग करे और शोथहर लेपों से स्थानीय शोथ को दूर करने का प्रयत्न करें एतदर्थ कर्पूरादि लेप, दारुषट्कलेप, अलसी की गरम २ पोलटीस तथा Antiflamin इत्यादि नवाविष्कृत लेपों

का प्रयोग हितकर होता है। कफ को निकालने के लिये रोगी की अवस्था देख कर वचाचूर्ण उष्ण जल से देकर वमन करा दे। साथ मल शुद्धि के लिये मृदु- रेचन दें। बाद उरस्तोय तथा श्वसनक की चिकित्सा करें।

३—स्तन रोहित मर्म—स्तन चूचुकों के ऊपर दो अंगुल दोनों ओर 'स्तन रोहित' नामक मर्म है। इसकी दीर्घता आधा अङ्गुल अर्थात् ½ इञ्च है। इसकी गणना कालान्तर प्राणहर मर्मों में है। यहां पर चोट लगने से छाती रक्त से भर कर कास श्वास से मृत्यु होती है।

"स्तनचूचुकयोरूर्ध्वं द्व्यङ्गुलमुभयतः स्तनरोहितौ नाम। तत्र लोहितपूर्णकोष्ठतया कासश्वासाभ्यां च म्रियते। (सु० शा० ६)

अर्धाङ्गुलमिते मांसमर्मणी कालान्तरमरणकारिणी" । (डल्हण)

रचना—इस मर्म की रचना में निम्न अंग जुड़ते हैं:—

(१) पर्शुकान्तरीय मांस पेशी (intercostal Muscle)

(२) फुफ्फुस का मूलभाग अपने सभी संबन्धित अंगो के साथ—जैसे—

(क) प्रश्वासिनी नाड़ी (Phrenicnerve)

(ख) प्राणदा नाड़ी (Vagus nerve Posterior)

(ग) उर्ध्व महासिरा (Superior Vena cava)

(घ) महाधमनी का अवरोहिनी भाग (Descending aorta)

(च) श्वास प्रणाली (Bronchus)

(छ) फुफ्फुसाभिगा धमनी (Pulmonary Artery)

(ज) ,, सिरा (,, Veins)

(ज) फुफ्फुसीया नाड़ीचक्र (,, (Plexus)

(ट) रसायिनियां (Lymphatic Vessels)

(ठ) रसायिनी ग्रंथियां (Lymphatic Glands),

यहां पर आभिघात होने से उपर्युक्त सभी अंगों पर आघात संभव है। परन्तु मांस मर्म होने का रक्तरण मांस पर तथा मांसगत रक्तवाहिनियों एवं फुफ्फुसाभि- गत धमनी तथा शिराओं पर अभिघात होने की अधिक संभावना रहती है। इन

अंगों के आहत होने से रक्तस्राव का अधिक होना और छाती प्रदेश में उनका एकत्र होकर श्वास में बाधा तथा कास की उत्पत्ति सर्वदा संभव है।

प्रतिकार—रक्तस्राव को रोकना, अभिघात जन्य तीव्र पीड़ा की शान्ति का उपाय तथा पूयभाव होने से रोकने का उपाय आवश्यक है। ऐसे अभिघात जन्य श्वास कास आदि में उरःक्षत की चिकित्सा हितकर है।

४—अपलाप मर्म—दोनों अंशकूटों के नीचे पार्श्वों के ऊपर के भाग पर अपलाप नामक मर्म है। यह सिरामर्म है और कालान्तर प्राणहर है। इसकी दीर्घता आधा अङ्गुल अर्थात ½ इञ्च है यहां पर वेध होने से रक्त का पूयभाव होकर मृत्यु होती है।

"अंशकूटयोरधस्तात् पार्श्वोपरिभागयोरपलापौ नाम, तत्र रक्तेन पूयभावं जातेन मरणं।" (सु. शा. ६)।

सिरामर्मणी अर्धाङ्गुले कालान्तरप्राणहरे च।" (डल्हण)

रचना—इसकी रचना में निम्न अंग जुड़ते हैं।

(१) वाही नाड़ी चक्र अपनी शाखाओं सहित। (Brachial plexus with its branches)

(२) कक्षानुगा धमनी (Axillary Artery)

(३) कक्षानुगा सिरा (Axillary vein)

(४) कक्षानुगा रसायिनिया (Lymphatic vessels in the axilla

(५) अंशोरस्का धमनी की अंशच्छदा पेशी को पोषण करने वाली शाखा जो कक्षानुगा महाधमनी की शाखा है।

यह मर्म कांख के नीचे छाती के बगल में (कक्षाभाग में) ऊपरी भाग में स्थित है। (वागभट के अनुसार यह पृष्ठवंश और उरःप्रदेश के बीच में स्थित है। इस मर्म पर आघात होने से रक्तस्राव के पश्चात होने वाले अशुचि व्रण (Sepsis) से जीवन का नाश होता है।

प्रतिकार—प्राथमिक चिकित्सा के पश्चात् पूयभाव को रोकने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। एतदर्थ-आभ्यन्तर प्रयोग के लिये गुग्गुलु शिलाजतु के

योगों का प्रयोग करना चाहिये। अभिहत स्थान को शुचि बनाए रखने के लिये क्रिमिनाशाक द्रवों से अभिसिञ्चन आदि करे। त्रिफला को दूध में पीस कर घृत या मक्खन मिलाकर लेप करे। नवाविष्कृत सल्फा समुदाय के औषधों का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग करना श्रेयस्कर है। उदुम्बरसार का प्रयोग भी इस में हितकर है। शेष चिकित्सा लक्षणों तथा उपद्रवों के अनुसार करे।

५-अपस्तम्भमर्म—छाती के दोनों ओर अपस्तम्भ नाम की दो नाड़ियां हैं। यह सिरा मर्म है और कालान्तर प्राणहर है। इसका प्रमाण आधा अंगुल अर्थात् $\frac{1}{2}$ इञ्च है। यहां पर वेध होने से छाती वायु से भर कर कास श्वास से मृत्यु होती है।

"उभयत्रोरसो नाड्यौ वातवहौ अपस्तम्भौ नाम, तत्र वातपूर्णकोष्ठतया कासश्वासाभ्यां च मरणम्।" (सु. शा. ६)

सिरामर्मणी अर्धाङ्गुलप्रमाणे कालान्तरप्राणहरे च। (डल्हण)

रचना—इसकी रचना में निम्न अङ्ग जुड़ते हैं।

(१) श्वास प्रणाली (Bronchus)
(२) प्रश्वाशिनी नाड़ी (Phrenic Nerve)
(३) प्राणदा नाड़ी (Vagus Nerve)
(४) महामातृका धमनी (Common Carotid Artery)
(५) अक्षधरा शिरा (Subclavian Vein)

यह मर्म छाती के दोनों भाग में स्थित है। इस मर्म से सम्बद्ध वक्ष तथा दोनों भागों में श्वास प्रणालियां हैं जिस से वायु का सञ्चार होता है। यदि इस मर्म से उक्त श्वासप्रणाली का ग्रहण किया जाय तो यह स्पष्ट है कि यहां पर अभिघात होने से वक्षगुहा वायु से भर कर भयंकर श्वास कास उत्पन्न कर जीवन-लीला समाप्त कर सकता है। परन्तु वाग्भट ने इस मर्म के आघात से कोष्ठ रक्त भर जाने से मृत्यु होती है ऐसा लिखा है। यह विचारणीय है। ऐसा प्रतीत होता है कि अभिघात से जब श्वास प्रणाली अभिहत होती है तो प्रणालियों में छिद्र

होने से वायु भीतर का दूषित वायु बाहर न जाकर और बाहरी वायु भीतर वायुकोषों में न जाकर छाती में अर्थात् वक्षगुहा में भर जाती है जिससे श्वास कास होकर मृत्यु होती है। और जब अभिघात से महामातृका तथा अक्षधरा सिरा अभिहत होता है तब उन रक्तवाहिनियों के क्षत से रक्तस्राव हो छाती में रक्त भर जाता है और मनुष्य की मृत्यु हो जाती है।

प्रतिकार—अपलाप के अभिघात के समान।

वक्तव्य—प्रत्यक्ष शारीर की दृष्टि से हृदय को छोड़ कर उरःप्रदेश के अन्य मर्मों का अंग विनिश्चय विशेष महत्त्व का नहीं है। छाती में दो ही महत्त्व के अंग वस्तुतः में होते हैं। एक रक्तवाहिनी युक्त हृदय और दूसरा फुफ्फुस। ये दोनों अवयव उरोगुहा (वक्षगुहा) को पूर्णतया ढके हुए हैं। मर्म शब्द से हृदय का स्वतंत्र रूप से निर्देश किया गया उपलब्ध होता है। उरःप्रदेश के शेष मर्म (स्तन रोहित, स्तन मूल, अपलाप तथा अपस्तम्भ) किसी न किसी प्रकार से फुफ्फुस से सम्बद्ध हैं। इसी से उनके अभिघात में फुफ्फुस के विकारों का उल्लेख है। जैसे–स्तनमूल के अभिघात में छाती में कफ भर जाने से (कफ-पूर्णकष्टतया), स्तनरोहित के अभिघात में छाती में रक्त के भर जाने से (रक्त-पूर्णकोष्ठतया) अपलाप के अभिघात में रक्त के पूय बन जाने से (रक्तेन पूयभाव-गतेन) और अपस्तम्भ के अभिघात में छाती में वायु के भर जाने से (वातपूर्ण-कोष्ठतया) मृत्यु हो जाती है ऐसा वर्णन मिलता है। छाती पर अभिघात होने से या वेध होने से छाती की दीवाल तथा पसली (पर्शुका) इत्यादि टूट जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि बाहर की हवा फुफुसावरण के भीतर जाकर वातोरस् (वातपूर्ण कोष्ठता—Pneumo Thorax) हो सकता है। इस के अतिरिक्त बाहर के जीवाणु प्रवेश कर के श्वसनक उत्फुलिका (Pneumonia, Broncho Pneumonovs) (कफपूर्णकष्ठता) उत्पन्न कर सकते है। बाहर की दीवार में टूट फूट होने से (Compound Fracture) या साधारण भग्न होने से (Simple Fracture of the Ribs) भी भीतर की रक्त वाहिनियां के विदीर्ण होने से रक्तोरस्—शोणित पूर्णकष्ठता (Haemo thorax) या फुप्फुसगत रक्तस्राव और तज्जन्य समष्ठीवन (Haemopto·

sis), उरःक्षत आदि हो सकता है। या भीतर का प्रच्छन्न संक्रमण (उपसर्ग) उत्तेजित होकर पूयोरस (Empyema) राजियक्ष्मा (Pulmonary T. B.) इत्यादि हो सकता है। इसके प्रमाण के लिये निम्न उच्चारण देखें—

"Pneumonia may follow directly upon injury, particularly of the chest, without necessarily any lession of the lungs. Trauma as for-example a blow on the chest may be followed by local tuberclosis"

(Oshler medicine)

"Trauma involving the chest wall may be followed by active pulmonary tuberclosis. Haemoptosis occur frequently in wounds of the chest bothpenetraiting & non-penetraiting. Inflamatory serious effusion may also occur as a complication of injury to the chest wall. In most of these conditions the examples often becomes purulent" (Text Aook of Medicin. Price) Haemothorax commonly result from wounds injuries etc". (Taylor).

ये सब रोग कालान्तर प्राणहर हैं, यह भी इस तथ्य को स्पष्ट कर देता है अतः स्तनमूल मर्म के वेध से कफ पूर्णता होकर राजयक्ष्मा, श्वसनक या उत्फुलिका का होना, स्तनरोहित के वेध में शोणितपूर्ण कोष्ठता से फुप्फुस गत रक्तस्राव (Haemoptosis) और अपलाप के वेध से बाह्य जीवाणु के प्रवेश हो जाने से रक्त का पूयभाव होकर पूयोरस् (Empyema) का होना सर्वथा संभव है। अपस्तम्भ के वेध से वातपूर्ण कोष्ठता होकर वातोरस् (Pneumo thorax) का होना भी स्पष्ट ही है। ये रोग छाती के एक विशिष्ट भाग पर आघात होने से ही हो सकते हैं; सर्वत्र अभिघात से नहीं। तथापि व्यवहार के लिये स्तनमूल से उरश्छदा पेशी दीर्घा की नीचला भाग का स्थान (Lower Portion of the Pectoralis Major), स्तन रोहित से चचुकीय

आभ्यन्तरी (Internal Mamary Vessels) का स्थान, अपलाप से (Lateral thoracic & Subscapillary Vessels) और अप-स्तम्भ में दोनों (Bronchies) समझा जा सकता है।

पृष्ठ के मर्म

१- **कटीकतरुण मर्म**—पृष्ठवंशों के दोनों ओर प्रत्येक श्रोणिकाण्ड में 'कटीकतरुण' नामक मर्म है। यह अस्थिमर्म है और इसका प्रमाण अर्धाङ्गुल या ½ इञ्च है। इसकी गणना कालान्तर प्राणहर मर्मों में है। यहां पर अभिघात होने से मनुष्य रक्तक्षयजन्य पाण्डु, विवर्ण और क्षीणदेह होकर मर जाता है।

"तत्र पृष्ठवंशमुभयतः प्रीतिश्रोणिकाण्डमस्थिनी कटीकतरुणे नाम मर्मणी, तत्र शोणितक्षयात् पाण्डुविवर्णो हीनरूपश्च म्रियते।" (सु० शा० ६)। **"अर्धाङ्गुले कालान्तरप्राणहरे च।"** (डल्हण)

रचना—इस मर्म में निम्न अङ्ग जुड़ते हैंः—

(१) जघन कपाल का पश्चात भाग (the Posteror aspect of the Ilium)

(२) कटि-त्रिक संधि के सामने जघनकपालिका धमनी का बाह्यजघन कपालिका तथा अधिश्रोणिका धमनी एव सिराओं का प्रकार (Bifer cation of the Common Iliac Artery opposite the lumbo sacral Articulation into the External iliac of the Hypogastpic arteries of the Corresponping Iliac Velns)

(३) त्रिक-जघन कपालिका स्नायु (Sacro Iliac Ligament)

उक्त रचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस मर्म पर अभिघात होने से मर्म में सन्नद्ध धमनी तथा सिराओं का फटना सर्वथा सम्भव है और इससे रक्तस्राव जन्य रक्तक्षय से पाण्डु आदि होना और उससे जीवन नाश सर्वथा सम्भव है।

प्रतिकार—प्राथमिक चिकित्सा अर्थात् स्तब्धता को रोकने के लिये वेदना-

पह औषधों के प्रयोग के बाद रक्तस्राव को बन्द करना परमावश्यक है। एतदर्थ पूर्वोक्त रक्तस्राव को रोकने के उपायों को वर्त्तना चाहिये। अभिहत स्थान पर शोथहर लेप का उपयोग करना चाहिये। पश्चात् रक्तक्षय जन्यपाण्डु की चिकित्सा पाण्डु रोगोक्त औषधियों से करनी चाहिये।

२--कुकुन्दर मर्म—पृष्ठवंश के दोनों ओर जघनास्थि के पार्श्वों के बाहर के भाग में किञ्चित् निम्न 'कुकुन्दर' नामक मर्म है। यह संधि मर्म है और वैकल्यकर मर्मों में इसकी गणना है। इसकी मुटाई ½ इञ्च अर्थात् आधा अंगुल है। यहां पर वेध होने से नोचे के शरीर में सुप्तता और चेष्टा नाश होता है।

"पार्श्वजघनबहिर्भागे पृष्ठवंशमुभयतो (वातिनिम्ने) कुकुन्दरे नाम मर्मणी, तत्र स्पर्शज्ञानमधःकाये चेष्टोपघातश्च (सु. शा. ६)।

"संधिमर्मणी अर्द्धाङ्गुले ईषन्निम्नाकारे वैकल्यकरे च।"(डल्हण)।

रचना—यह वह स्थान है जहां त्रिक और जघन-कपाल मिलता है, जिस पर गृध्रसी नाड़ी त्रिक चक्र से निकल कर गृध्रसीद्वार से श्रोणिगुहा में प्रविष्ट होती है। अतः इस की रचना से स्पष्ट हो जाता है कि यहां पर अभिघात होने से उक्त नाड़ीचक्र के तथा गृध्रसी नाड़ी अभिहत होने के कारण अधः काय में स्पर्शज्ञान का तथा उसके चेष्टाओं का उपघात होना सर्वथा युक्ति-युक्त है।

प्रतिकार—प्राथमिक चिकित्सा के बाद अभिहत स्थान पर तैलधारा देनी चाहिये। शोथ की शान्ति के लिये शोथहर लेपों का प्रयोग करना चाहिये। इस के अतिरिक्त गृध्रसी रोगोक्त औषधों का व्यवहार इस में हितकर होता है। अभिहत स्थान पर यदि व्रण हो जाय तो उसकी व्रणवत् चिकित्सा करनी चाहिये। शोथ शान्ति के बाद अभ्यंगादि द्वारा उस अङ्ग को पुनः सबल बनाने का प्रयत्न करें और बृंहण तैलों के अभिसिञ्चन तथा धारा से स्थानीय नाड़ियों को पुष्ट करें अभिघातजन्य अन्य शारीरिक उपद्रवों की चिकित्सा करनी चाहिये।

३—नितम्ब मर्म—श्रोणि काण्डों के ऊपर आशय को आच्छादन करने वाले और दोनों पार्श्वों को जोड़ने वाले नितम्ब नामक मर्म है। यह अस्थि मर्म अर्धाङ्गुल प्रमाण और कालान्तर प्राणहर है। यहां पर वेध होने से नीचे का

शरीर सुख जाता है और दुर्वलता से मृत्यु हो जाती है।

"श्रोणिकाण्डयोरुपर्याशयाच्छादकौ पार्श्वान्तरप्रतिबद्धो नितम्बौ नाम, तत्राधःकायशोषो दौर्बल्याच्च मरणम् । (सु० शा० ६)

अस्थिमर्मणी अर्धाङ्गुले कालान्तरप्राणहरे च ।" (डल्हण)

रचना—इस मर्म की रचना में निम्न अङ्ग जुड़ते हैः—

(१) विमुक्ताग्र पर्शुका (Floating Ribs)

(२) कटि गुहान्तरीय नाडी चक्र (Lumber Plexas of Other Important Structure nere by)

उक्त रचना से स्पष्ट हो जाता है कि इस मर्म के अभिघात होने पर कटि-गुहान्तरीय नाड़ी चक्र पर आघात होने से अधःकाय का अनुप्राणन बन्द हो जायगा जिस से अधःकाय शुष्क हो जायगा और दुर्वलता दिनानुदिन बढ़ती जायगी जिससे कालान्तर में जीवन नाश हो जायगा ।

प्रतिकार—स्तब्धता को रोकने के लिये पूर्वोक्त वेदनापह चिकित्सा करें । पश्चात् शोथहर लेप देकर वहां के शोथ को दूर करने का प्रयत्न करें । शोथ के नष्ट हो जाने पर अभ्यंग आदि द्वारा अभिहत स्थान को सबल बनाने का प्रयत्न करें । पक्षाघातोक्त सभी प्रतिकार इसमें लाभकर सिद्ध होगें । मल शुद्धि के लिये अनुवासन बस्ति देवें । व्रण हो जाने पर व्रणवत् चिकित्सा करें । अन्य शारीरिक उपद्रवों को देख उपद्रव के अनुसार ही चिकित्सा की व्यवस्था करें ।

४--पार्श्वसन्धि मर्म—श्रोणिजपालों के नीचे बंधे हुए जघनपार्श्वों के मध्य में, जघन से तिरछा और ऊपर की ओर पार्श्वसंधि नामक मर्म है । यह सिरा मर्म है और इसका प्रमाण आधा अंगुल अर्थात् ½ इञ्च है। इसकी गणना कालान्तर प्राणहर मर्मों में है। यहां पर चोट लगने से कोष्ठ के रक्त से भर जाने के कारण मृत्यु होती है।

"अधःपार्श्वान्तरप्रतिबद्धो जघनपार्श्वमध्ययोस्तिर्यगूर्ध्वं च जघनात् पार्श्वसंधिर्नाम, तत्र लोहितपूर्णकोष्ठतया म्रियते । (सु. शा. ६),

"सिरामर्मणी अर्धाङ्गुले कालान्तरप्राणहरे च ।" (डल्हण)

रचना—इस मर्म की रचना में निम्न अङ्ग जुड़ते हैं—

(२) **वृक्कनीधमनी और सिरा** (The renal artery arising from the abdominal aorta of the renal veins)

यह मर्म पर्शुका का तरुणास्थियो तथा वस्तिगुहा के मध्य में वृक्क में लगी हुई रक्तवाहिनियों को संकेत करती है। अतः यहां पर अभिघात होने से उक्त रक्तवाहिनियों के फट जाने से रक्तस्राव होकर कोष्ट में (उदरगुहा में) रक्त एकत्र हो जाने से मृत्यु हो जाती है।

प्रतिकार—सर्व प्रथम स्तब्धता को रोकने की चिकित्सा कर रक्तस्राव को रोकना आवश्यक है। रोगी को पूर्ण विश्रामपूर्वक शय्या पर लिटाए रखे और रक्तरोध के लिये बरफ की थैली आदि का प्रयोग करें। एतदर्थ लीटरस टीयुर नाम यंत्र कटि प्रदेश में लगावें। यदि इतने पर भी रक्तस्राव वन्द न हो और रोगी के जीवन का संशय हो तो आवश्यकतानुसार चिरा (Exploratory incision) लगा कर रक्त वाहिनियों को बांधने का प्रयत्न करें। विशेष प्रतिकार के लिये (शस्त्र क्रिया के लिये) शस्त्रक्रियोक्त रक्तस्राव को रोकने का प्रयत्न करें।

५--बृहतीमर्म—पृष्ठवंश के दोनों ओर स्तनमूलों के सीधे में 'बृहती' नामक मर्म है। यह सिरामर्म है और कालान्तर प्राणहर है। इसकी दीर्घता आधा अंगुल अर्थात् ½ इञ्च है। यहां पर वेध होने से रक्त के अतिस्राव जन्य उपद्रवों से मृत्यु होती हैं।

स्तनमूलाऽनुभयतः पृष्ठवंशस्य बृहत्यौ नाम, तत्र शोणितातिप्रवृत्तिनिमित्तैरुपद्रवैर्म्रियते।" (सु. शा. ६)

"सिरामर्मणी अर्धाङ्गुले कालान्तरे मृत्युप्रदे च।" (डल्हण)

रचना—इस मर्म की रचना निम्न प्रकार से है:—

(१) दाईं ओर यकृत् की रक्तवाहिनियां (The Vessels at the hilum of liver)

(२) बाईं ओर प्लीहा की रक्तवाहिनियां (The Vessels at the hilum of the spleen)

इस मर्म की स्थिति निम्न प्रकार है:—दोनों पार्श्वों में स्तनमूल से पृष्ठवंश तक। यहां पर अभिघात होने से यकृत् तथा प्लीहा की रक्तवाहिनियां फट जाती हैं और रक्तातिस्राव से मृत्यु हो जाती है।

प्रतिकार—प्राथमिक चिकित्सा के अनन्तर रोगी को पूर्ण विश्रामपूर्वक शय्या पर लेटा दे। शीत क्रिया रक्तरोध के लिये वर्फ आदि द्वारा आवश्यकतानुसार करें। पथ्य में तरल सुपुष्ट तथा सुजर द्रव्य देवे। बस्ति द्वारा मलशुद्धि करता रहे। रक्तस्रावाधिक्य होने पर तथा जीवन के संशय काल में उदर विदारण (Exploratory Laparotomy) आदि की भी आवश्यकता हो सकती है। यह कार्य करने के पूर्व रक्तस्राव रोकने के अन्य पूर्वोक्त उपायों को करें। रक्तस्राव रुक जाने पर अन्य लाक्षणिक चिकित्सा करें। शारीरिक उपद्रवों को देख उनकी शान्ति का उपाय करें।

६–अंशफलक मर्म—पीठ पर पृष्ठवंश के दोनों ओर त्रिक से संबंधित 'अंशफलक' नामक मर्म है। अस्थिमर्मों में इसकी गणना है और इसका प्रमाण आधा अंगुल अर्थात् ½ इंच है। यह वैकल्यकर मर्म है। यहां पर चोट लगने से बाहुओं का शोष और शून्यता होती है।

"पृष्ठोपरि पृष्ठवंशमुभयतस्त्रिकसंबद्धे अंशफलके नाम, तत्र बाह्वोः स्वापशोषौ।" (सु. शा. ६)।

"अस्थिमर्मणी अर्धाङ्गुले वैकल्यकारिणी च।" (डल्हण)

रचना—यह मर्म निम्न अङ्गों से निर्मित होता है:—

(१) अंशफलक (Scapula)

(२) अंशफलक में जुटनेवाली मांसपेशियों को अनुप्राणित करनेवाली नाड़ी।

(३) अंशफलक को पोषण करने वाली रक्तवाहिनियां।

यह मर्म पृष्ठवंश के दोनों तरफ पृष्ठ के उपरिभाग में स्थित है। इस पर आघात होने से ऊर्ध्वशाखा की शिथिलता तथा अकर्मण्यता एवं मृत्यु तक हो सकती है।

इसका कारण अंशफलक की नाड़ियों का आघात है ।

प्रतिकार—वेदनाजन्य स्तब्धता को रोकने के लिये वेदनापह औषधों का प्रयोग करें । वेदना की शान्ति के लिये वेदनानाशक लेपों का प्रयोग करें । यदि अंशफलक विश्लिष्ट हो गया हो तो उसे सुव्यवस्थित रूप से पुनः संश्लिष्ट करें । अभिहत स्थान पर शोथहर लेप करें और शोथ तथा वेदना की निवृत्ति हो जाने पर उस स्थान पर वातहर तैलों का अभ्यंग करें । अन्य शारीरिक कष्टों के लिये लाक्षणिक चिकित्सा करें । यदि अभिघात अधिक गम्भीर हो तो अभिहत स्थान की परीक्षा कर अस्थिभंग तथा विश्लिष्ट अवयवों को पुनः संधित करने के लिये पेरीस पलास्टर की पट्टी दें । कुछ रोज तक पूर्ण विश्राम में रहने दें ।

७-अंश मर्म—बाहु, शिर और ग्रीवा के मध्य में अंशपीठ और कंधे को बाँधने वाला 'अंश' नामक मर्म है । यह स्नायु मर्म है और इसकी मोटाई आधा अंगुल अर्थात् ½ इञ्च है । इसकी गणना वैकल्यकर मर्मों में है । यहाँ पर चोट लगने से बाहुओं की स्तब्धता (अकर्मण्यता) होती है ।

"बाहुमूर्ध्वग्रीवामध्येंऽशपीठस्कन्धनिबंधनावंसौ नाम, तत्र स्तब्धबाहुता" (सु. शा. ६)

रचना—इस मर्म की रचना में निम्न अङ्ग जुड़ते हैं:—

(१) तुण्डाक्षक बंधिनी स्नायु (Coraco clavicular ligaments)
(२) त्रिकोणिका स्नायु (Conoid ligament)
(३) चतुरस्त्रिका स्नायु (Trepezoid ligament)
(४) अक्षांशानुबंधिनी स्नायु (Superior a cromeco-clavicular ligament)

(५) तुण्ड कूणिका स्नायु (Coraco acrominal ligaments)

इस मर्म की स्थिति इस प्रकार है—यह एक बगल से अंश (कंधा) और दूसरे बगल से शिर और गर्दन के बीच में है । यहाँ पर उपर्युक्त स्नायुएँ अंशफलक को अक्षकास्थि के साथ बाँधती है । अतः यहाँ पर अभिघात होने से ऊर्ध्व शाखाएँ अकर्मण्य हो जाती हैं ।

प्रतिकार— प्राथमिक चिकित्सा के पश्चात अभिघात के गाम्भीर्य का निर्णय कर पेरीस पलास्टर तथा अन्य औषध की पट्टी दे सुबद्ध कर अभिहत स्थान को पूर्ण विश्राम में रखे। वेदना तथा शोथ की शान्ति के लिये वेदनापह तथा शोथहर लेपों का उपयोग करे। अन्य शारीरिक उपद्रवों को देखकर उनकी लाक्षणिक चिकित्सा करें।

वक्तव्य—पृष्ठ के चौदह मर्मों को दो भागों में विभक्त किया गया है। (१) निम्न भाग और (२) ऊर्ध्व भाग। निम्न भाग में—कटीक तरुण, कुकुन्दर, नितम्ब और पार्श्वसंधि ये आठ मर्म हैं। ये प्रत्येक पक्ष में चार हैं, अतः दोनों पक्ष के आठ हुए। ऊर्ध्व विभाग में बृहती, अंशफलक और अंश ये तीन-तीन करके दोनों पक्षों में छ मर्म हैं। निम्न विभाग के सभी मर्म नितम्ब अर्थात् श्रोणि प्रदेश (Gluteal region) में समाविष्ट हैं। और ऊर्ध्व विभाग के मर्म ग्रीवा और दोनों अंशफलों से मर्यादित स्थान में सन्निविष्ट हैं। अर्थात् इन दोनों के बीच के प्रदेश में कोई मर्म नहीं है। श्रोणि प्रदेश के मर्मों का वर्णन इतना स्वल्प और अस्पष्ट है कि प्रत्येक मर्म से श्रोणि प्रदेश के एकाध मर्यादित अंग का अर्थ निकालना कठिन है। अतः प्रत्येक मर्म के सम्बन्ध में डल्हण तथा हराणचन्द्र की टीका में ऐसा संकेत मिलता है कि श्रोणि प्रदेश की उत्तरा और अधरा नाड़ियाँ और धमनिया (Superior & inferior Gluteal nerve & arteries) गुदोपस्थिका नाड़ी (Internal Pudental) और धमनी, तथा गृध्रसी नाड़ी (Sciatic nerve) ये महत्व के अंग हैं। धमनियों के टूट जाने से रक्तक्षय, पाण्डु इत्यादि और नाड़ी के ऊपर वेध होने से चेष्टोपरम, स्पर्शाज्ञान, ये लक्षण होते हैं। इनके अतिरिक्त पेशियों के वेध होने से भी चेष्टोपघात हो सकता है। ये मर्माङ्ग कुकुन्दरकूट (Ischeal tuberosity) ऊर्ध्वस्थि महाशिखर (Greater tronchanter) और जघनकपाल का ऊपर का किनारा, इनके बीच में होता है। अतः इस स्थान में वेध होने से नाड़ी वा धमनी के आघात के अनुसार लक्षण पैदा होंगे। यदि प्रत्येक मर्म के लिये स्वतन्त्र नाम देना हो तो निम्न प्रकार दे सकते हैं—

(१) कटीक तरुण = Sciatic notch.
(२) कुकुन्दर = Ischeal tuberosity.
(३) नितम्ब = Ala of the ilium.
(४) पार्श्वसंधि = Common iliac artery.

पार्श्वसंधि के वेध से लोहित पूर्ण-कोष्ठता से मृत्यु कहा है, अतः इससे श्रोणिगुहागत कोई धमनी का ग्रहण करना ही उचित है।

ऊर्ध्वभाग के मर्मों में बृहती से अंशफलक के लम्बे किनारे के पास वाली धमनियों का ही ग्रहण करना होगा। अंश फलक से उस के अंशप्राचीरक (Spine) के ऊपर का हिस्सा का ग्रहण ही उचित होगा। अंश से अंशसंधान (Shoulder joint) का ग्रहण करना चाहिये।

छठवां अध्याय

(जत्रूर्ध्व प्रदेश के मर्म)

१—नीला मन्या मर्म— कण्ठनाड़ी (श्वास का मार्ग जिस में स्वर यन्त्र और नीचे की श्वास प्रणाली इन दोनों का समावेश होता है) के दोनों ओर व्यत्यास (व्यतिक्रम) से (अर्थात्-एक नीला और एक मन्या एक तरफ और वैसे ही दूसरी तरफ) दो नीला और दो मन्या नामक चार धमनियां हैं। ये शिरा मर्म हैं और इनकी गणना वैकल्यकर मर्मों में है। इसकी मोटाई चार अङ्गुल अर्थात् ४ इञ्च है। यहां पर वेध होने से गूंगापन, स्वर में विकृति, और जिह्वा के के रसज्ञान का अभाव होता है।

"तत्र कण्ठनाडीमुभयतश्चतस्रो धमन्यो द्वे नीले द्वे मन्ये व्यत्यासेन, तत्र मूकता स्वरवैकृतमरसग्राहिता च।" (सु. शा. ६)
"नीले मन्ये सिरामर्मणी चतुरङ्गुले वैकल्यकारिणी च।" (डल्हण)

रचना—नीला और मन्या के वेध से होने वाले सभी लक्षण वातिक (Nervous) प्रतीत होते हैं। ये वातिक लक्षण स्वरयंत्र और ज़िह्वा की नाड़ियों के विकृत होने से या इनकी धमनियों का नाश होने से हो सकते हैं। गले में जिह्वा और स्वरयंत्र की 'स्वरयंत्रगा उत्तरा' (Superior laryngeal) 'कण्ठ

रासनी (Glasso-pharyngeal) और जिह्वामूलिनी (Hvpoglossal) ये नाड़ियां होती हैं तथा उत्तर ग्रैविका (Superior Thyroid) और अनुजिह्विका (Liugual) ये धमनियां भी होती हैं। यदि नीले और मन्ये इनकी वेध से होने वाले परिणामों पर केवल ध्यान दिया जाय और इनका ही अङ्गविनिश्चय करना हो तो इन से उपर्युक्त नाड़ियों और धमनियों का ग्रहण करना उचित होगा। मन्या के सम्बन्ध में चरक संहिता में निम्न वचन मिलता है।

"तस्य चेन्मन्ये परिमृश्यमाने न स्पन्देयेतां, परासुरिति विद्यात्।" (च. इ. ४)। इसकी टीका में चक्रपाणि लिखते हैं—**"मन्ये गलपार्श्वगते धमन्यौ"**। इस वचन का विचार प्रत्यक्ष शरीर की दृष्टि से करने पर मन्या से Carotid arteries का ग्रहण करना पड़ेगा और नीले से Juglar vein का ग्रहण करना होगा। पं० हरिप्रपन्न शास्त्री ने नीला और मन्या से इन्हीं का ग्रहण किया है। नीले और मन्ये वैकल्यकर मर्म हैं। Carotid arteries इतने महत्त्व के अवयव हैं कि उनके वेध से मृत्यु हो सकती है। इससे यह स्पष्ट है कि शारीरिक और आर्थिक दृष्टि से नीले और मन्य के अङ्गविनिश्चय में प्रथम विचार विशेष युक्तियुक्त है।

प्रतिकार—प्राथमिक चिकित्सा के अनन्तर विकृति के अनुसार प्रतिकार करें। मूकता होने पर मूक मिन्मिन की चिकित्सा और स्वर विकार में स्वरभेद की चिकित्सा तथा जिह्वा के रसज्ञान के नष्ट होने पर उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। अभिहत स्थान पर वेदना तथा शोथ की शान्ति के लिये वेदनापह और शोथहर लेप लगावे।

चित्र नं० ४

(शिर तथा ग्रीवा प्रदेश के मर्म)

नीला मन्या मर्म

(१) अनुमन्या सिरा
(२) महामातृका धमनी
(३) कण्ठ रासनी नाड़ी
(४) जिह्वामूलिनी नाड़ी
(५) अनुजिह्विका धमनी
(६) शिफाकण्ठिका पेशी
(७) अनुजिह्विका सिरा

(८) अन्तर्मातृका धमनी

(९) बहिर्मातृका धमनी

मातृका मर्म

(१) अनुकोष्ठिका या प्रश्वसिनी नाड़ी

(२) प्राणदा नाड़ी

(३) अन्तर्मन्या सिरा

(४) महामातृका धमनी

(५) अक्षाधरा सिरा

(६) अक्षाधरा धमनी

(७) उरःकण्ठिका पेशी

(८) अधिमन्या सिरा

कृकाटिका मर्म

(१) चूड़ावलया कशेरु

(२) अनुपार्श्विक चूड़ावलया-पश्चात् कपाल-सन्धि-बन्धिनी स्नायु रज्जू

(३) पश्चात् कपाल

(४) चूड़ावलया पश्चात् कपालीया कला पश्चिमा

विधुर मर्म

(चित्र ११ देखो)

फणामर्म

(चित्र ६ देखो)

अपाङ्ग मर्म

(चित्र ५ देखो)

आवर्त्त मर्म

(चित्र ६ देखो)

शंख मर्म

(१) शङ्खास्थिका तनुतम कोमल भाग।

उत्क्षेप मर्म

(१) शङ्खच्छदा पेशी

(२) अनुशङ्खा-उत्ताना धमनी की पुरः शाखा

(३) गण्डानुशङ्खिका नाड़ी

स्थापनी मर्म

(१) सिराप्रवाहिका, जो उण्डुकविवर से निकल कर दीर्घिका सिरा कुल्या उत्तरा से मिलती है।

(२) झर्झरास्थि का त्रिकोण प्रवर्धनक।

सीमन्त मर्म

(१) पुरःकपालीय सीमन्त

(२) पार्श्वकपालीय सीमन्त

(३) पश्चिम सीमन्त

(४) मध्य सीमन्त

शृङ्गाटक मर्म

(१) रूपसंज्ञा-केन्द्र

(२) रूपमनस्-केन्द्र

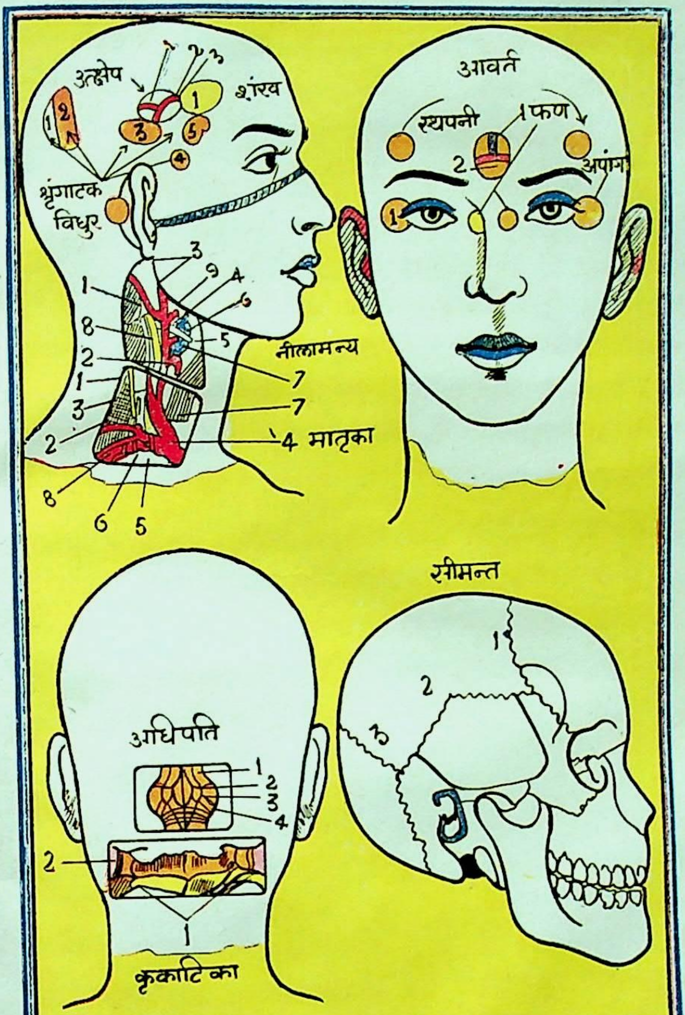
(३) श्रवण-केन्द्र

(४) रस-गन्ध-ज्ञान-केन्द्र

(५) वाणि-केन्द्र

२—मातृका मर्म—ग्रीवा के दोनों ओर मातृका नामक चार चार प्रत्येक पार्श्व में सिराएँ हैं। यह सद्यःप्राणहर मर्म है। इनकी मोटाई चार अंगुल अर्थात् ४ इञ्च है। यहां पर वेध होने से तत्काल मृत्यु होती है।

मर्म विज्ञान चित्र ४ पृष्ठ ८६



"ग्रीवायामुभयतश्चतस्रः सिरा मातृकाः, तत्र सद्योमरणम् (सु०शा०६)
"सिरामर्माणि चतुरंगुलप्रमाणानि ।" (डल्हण)

रचना—ग्रीवा के दोनों ओर कारोटीड और इन्टर्नल जगलर मेन के अतिरिक्त कई अन्य सिरायें भी होती हैं। यदि वेध के परिणाम के अनुसार इनका विचार करना हो तो मातृकाओं से Internal & External Carotid Arteries and Internal & External Juglar Veins का ग्रहण करना उचित होगा। यदि अर्थ के ऊपर ध्यान न देकर केवल ग्रीवाओं की दोनों तरफ की सिराओं की संख्या का विचार करके निर्णय करना हो तो जैसे पं० हरिप्रपन्न जी समझते हैं वैसे मातृकाओं से ग्रीवा की उत्तान सिराओं का (Anterior & External Posterior, External Juglar Veinsऔर Common Fcial Veins) ग्रहण कर सकते हैं। संक्षेप में यद्यपि नीला, मन्या और मातृका के अङ्गविनिश्चय में मतभेद हैं; तथापि इनके द्वारा यह बताया गया है कि ग्रीवा के सामने का भाग एक महत्त्व का मर्म स्थान है। इस स्थान को मन्या स्थान कहते हैं। जैसे—**"महाहेतुर्वली वायुः सिराः सस्नायुकण्डराः। मन्या पृष्ठाश्रिता बाह्याः संशोष्यानयेद् वहिः॥"** वाग्भट ने इनका स्थान जिह्वा और नासा भी बतलाया है। इस प्रकार उक्त वर्णनों के अतिरिक्त Vagus nerve तथा Phrenic nerve का भी इसमें समावेश हो जाता है।

प्रतिकार—लक्षण के अनुसार।

३—कृकाटिका मर्म—शिर और ग्रीवा के जोड़ पर 'कृकाटिका' नामक मर्म है। ये संख्या में दो हैं और संधिमर्म में इनकी गणना है। ये वैकल्यकर मर्म हैं और इनकी मोटाई अर्धाङ्गुल अर्थात् ½ इञ्च है। यहाँ पर चोट लगने से सिर में कम्प हो जाता है।

"शिरोग्रीवयोः सधाने कृकाटिके नाम, तत्र चलमूर्धता।" (सु०शा०६)

रचना—उपर्युक्त वर्णन के अनुसार कृकाटिका ग्रीवा और शिर के संयोग स्थान का पिछला भाग है। म० म० गणनाथसेन ने प्रत्यक्षशारीर में "कृका-

टिकं नाम अङ्गुरीयाकारं तरुणास्थि स्वरयन्त्राधारमवयवभूतम्" इस प्रकार इसका वर्णन किया है। परन्तु यह अर्थ सुश्रुत सम्मत नहीं प्रतीत होता। अवट्ठ और कृकाटिका दोनों ही शिर के पीछे के भाग में स्थित हैं। कृकाटिका पश्चात् कपाल और चूड़ावलया का सन्धिस्थल (Articulation between the occipital a Atlas) प्रतीत होता है। इस मर्म के निर्माण में इसके अतिरिक्त निम्न अंग और जुड़ते हैं:—

(१) उपर्युक्त सन्धि को बांधने वाली स्नायु (Ligaments) और कला जैसे—

(क) Atlanto Occipital Membrane.

(ख) Lateral atlanto Occipital Ligaments.

प्रतिकार—शिरःकम्प की चिकित्सा करें। अन्य शारीरिक विकार के लिये लाक्षणिक प्रतिकार करें।

वक्तव्य—उपर्युक्त मर्म (नीला मन्या, मातृका तथा कृकाटिका) जत्रु के ऊपर शिर के नीचे के प्रदेश में अर्थात् ग्रीवा प्रदेश में स्थित है। परिणाम की दृष्टि से नीला मन्या को Superior Laryngeal, Glasso Pharyngeal तथा Hypoglossal का स्थान मानना, मातृका को Carotid arteris मानना तथा कृकाटिका को उपर्युक्त सन्धि स्थल मानना अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

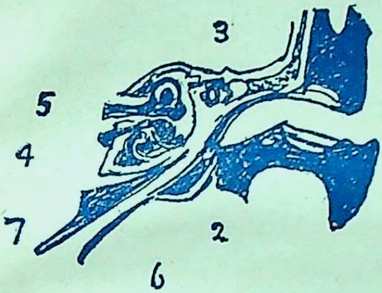
चित्र नं० ५

(शिर के मर्म)

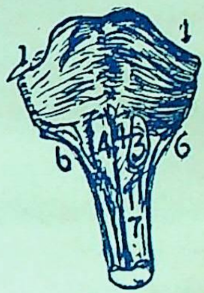
विधुर मर्म

(१) बहिःकर्ण कुहर।
(२) कर्णपटह कीला।
(३) तीन तरुणास्थियों युक्त मध्यकर्ण।
(४) अन्तःकर्ण।
(५) शिरःप्रदेश की आठवीं शीर्षण्य नाड़ी।
(६) अश्मकूट।
(७) कर्णिका नाली जो प्रसनिका तक गई है।

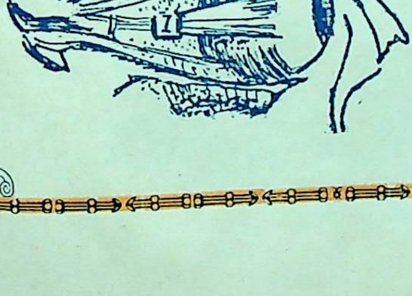
(विधुर)



(अधि पति)



(अपांग-आवर्त्त)



अपाङ्ग मर्म

(१) दृष्टि नाड़ी।
(२) जतुकास्थि के क्षुद्र पंख का पुरः कपालीय संधि।
(३) पुरःकपाल का नेत्रच्छदफलक।

आवर्त्त मर्म

(१) नेत्र गति का पुरःकेन्द्र (देखो चित्र ६)।
(२) जतुकास्थि के क्षुद्र पंख की संधि।

अधिपति मर्म

(१) पञ्चम नाड़ी का मूल।
(२) उष्णीषक (पोन्स)।
(३) इसका उपरि सूत्र।
(४) मुकुलिका (पीरामीड)।
(५) लवन्तिका (औलीभरी बडीस्)।
(६) अधरवृन्तिका।
(७) सुषुम्ना नाड़ी की पुरःपंक्ति।
(८) सुषुम्ना नाड़ी की पार्श्वपंक्ति।

(शिर के मर्म)

१—**विधुर मर्म**—कान के पीछे नीचे की ओर आश्रित हुए विधुर नामक दो मर्म हैं। ये स्नायु मर्म हैं और इनकी गणना वैकल्यकर मर्मों में है। इनकी मोटाई आधा अङ्गुल अर्थात् ½ इञ्च है। वागभट के अनुसार ये धमनीमर्म हैं। यहां पर अभिघात होने से बधिरता होती है।

"कर्णपृष्ठतोऽधः संश्रिते विधुरे नाम, तत्र बाधिर्यम्।" (सु० शा० ६)

"स्नायुमर्मणी किञ्चिन्निम्नाकारे वैकल्यकारिणी च।" (डल्हण)

अष्टांगहृदय में विधुर को धमनीमर्म कहा गया है और इनका स्थान ठीक कान के नीचे के निम्न स्थान में दिया है।

"अधस्तात्कर्णयोर्निम्ने विधुरे श्रुतिहारिणी"।

रचना—इस मर्म के स्थान पर पश्चिम कर्णिका, धमनी और सिरा (Posterior Aurcular arteries & veins) होती है जो कान के नीचे के स्थान से प्रारम्भ होकर कान के पीछे से ऊपर की ओर चली जाती है। इस धमनी या सिरा के वेध होने से बधिरता होने की सम्भावना हो सकती है। कान के ऊपर जोर की चोट लगने से सिरा के साथ कान का पर्दा (Tympanum) भी विदीर्ण हो सकता है। चोट के अधिक प्रबल होने पर कर्णनाड़ी भी अभिहत हो सकती है जिससे बाधिर्य होना सर्वथा सम्भव है। इस मर्म की

रचना में निम्न अङ्ग जुड़ते हैं:—

(१) कर्ण पटह की कला (Tympanic membrane).

(२) मध्यकर्ण की रचना (Structure in the Midle Ear)

(३) आठवीं शीर्षण्य नाड़ी की शाखा (Branches of the 6th Cranial nerve)

प्रतिकार—प्राथमिक चिकित्सा के पश्चात् वाधिर्य की चिकित्सा करें।

चित्र नं० ६

आवर्त्त मर्म

१—नेत्र गति के लिये पुरःकेन्द्र (मस्तिष्क के पुरःखण्ड में)

शृङ्गाटक मर्म

१—वाणी केन्द्र।

२—रसना तथा घ्राण केन्द्र।

३—श्रवण केन्द्र।

४—दृष्टि मनः क्षेत्र।

५—दृष्टि संज्ञा क्षेत्र।

फण मर्म

१—गंध गुहा।

२—गंधनाड़ियों का वितान

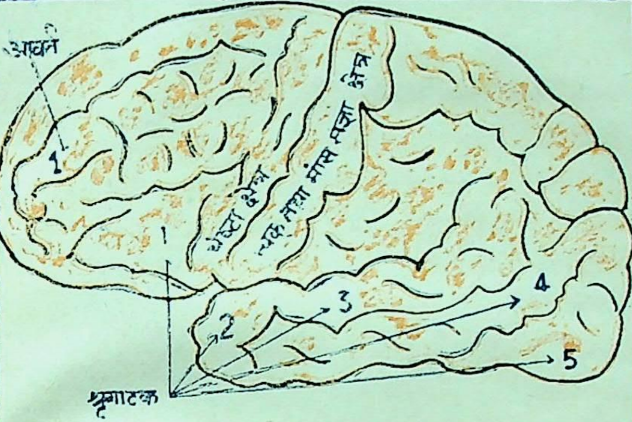
गंधगुहा में प्रवेश के लिये।

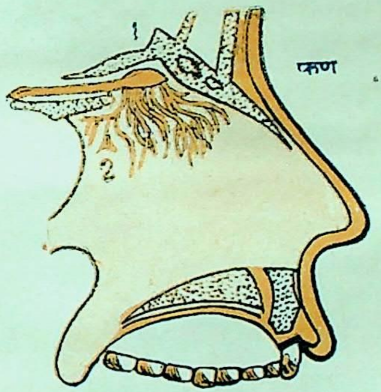
२—फण मर्म—नासा मार्ग के दोनों ओर भीतर (नासाछत के पास) स्रोतों मार्ग से बंधे हुए 'फण' नामक मर्म है। यह शिरामर्म है। और वैकल्यकर मर्मों में इसकी गणना है। इसका प्रमाण अर्धाङ्गुल अर्थात् $\frac{1}{2}$ इञ्च है। संख्या में ये दो हैं और यहां पर चोट लगने से गन्ध ज्ञान नष्ट हो जाता है।

"घ्राणमार्गमुभयतोऽभ्यन्तरतः स्रोतोमार्गप्रतिबद्धे फणे नाम, तत्र गन्धाज्ञानम्"। (सु० शा० ६)

"घ्राणमार्गस्य द्वयोः पार्श्वयोरभ्यन्तर्विवरद्वारसंबद्धे फणे, सिरामर्मणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकारिणी च।" (डल्हण)

मर्म विज्ञान चित्र ६ पृष्ठ ९०





अष्टांगहृदय में फण का वर्णन निम्न प्रकार से है:—

"फणावुभयतो घ्राणमार्गं श्रोत्रपथानुगौ।
अन्तर्गलस्थितौ वेधाद् गन्धविज्ञानहारिणौ।"

रचना—उक्त वर्णन में श्रोत्रपथ से श्रुतिसुरंग का द्वार (Orfice of the Auditory tube) अभिप्रेत है। इस विवरण से फणों का स्थान नासा में भीतर और ऊपर श्रोत्रमार्ग तक होता है। इसी स्थान को नासागुहा कहते हैं। इसके ऊपर के भाग में तथा उसके सामने की नासा प्राचीर में गन्ध नाड़ी (Olfactory nerve) की शाखा प्रशाखायें फैली रहती हैं, जिनके द्वारा गन्ध-ग्रहण होता है। इस स्थान को अंग्रेजी में (Olfactory region of the Nasal Cavity) कहते हैं।

इस मर्म पर अभिघात होने से गन्ध नाड़ी आहत हो जाती है और गंध क्षेत्र में भी विकृति आ जाती है, जिससे गन्धज्ञान नष्ट हो जाता है।

प्रतिकार—प्राथमिक चिकित्सा के बाद वेदना तथा शोथ शान्ति के लिये वेदनापह और शोथहर लेप लगावें। बाद गंधनाड़ी को उत्तेजित करने के लिये नस्य का प्रयोग करें। व्याघ्री तैल, अणु तैल तथा चन्दनादि तैल का नस्य देवें। नासा के उपरिभाग पर षड्बिन्दु तैल का मर्दन करें और आवश्यकतानुसार इसका नस्य देवें।

२ अपाङ्ग मर्म—भ्रूपुच्छों के अन्त के नीचे आंखों के बाहर की ओर 'अपाङ्ग' नामक मर्म है। यह सिरा मर्म है परन्तु वाग्भट के अनुसार स्नायुमर्म है। इसकी गणना वैकल्यकर मर्मों में है और इसकी मोटाई आधा अङ्गुल अर्थात् ½ इञ्च है। यहां पर चोट लगने से अन्धापन अथवा दृष्टि की क्षीणता होती है।

भ्रूपुच्छान्तयोरधोऽक्ष्णोर्बाह्यतोऽपाङ्गौ नाम, तत्रान्ध्यं दृष्ट्युपघातो वा।" (सु० शा० ६)।

"शिरामर्मणी अर्धाङ्गुले वैकल्यकरे च।" (डल्हण)

रचना—इस मर्म का स्थान नेत्र गोलक के बहिःकोण पर (Outer Corner or canthus of the eys) है। यहांपर गण्ड तथा शंख देशीय

रक्तवाहिनियां (Zygomatic & Temporal Vessels) रहती है इस मर्म की रचना में इसके अतिरिक्त निम्न अङ्ग जुड़ते हैं:—

(१) दृष्टि नाड़ी और उसकी शाखाएँ। (Optic nerve & its branches, cilliary nerve, 2nd Cranial nerve)

(२) अश्रुपीठीय नाड़ी (Lachrymal nerve from the Ophthalmic division of the 5th Cranial nerve)

(३) नेत्र पार्श्विकी नाड़ी (Abducens, 6th cranial nerve supplying Rectus lalvrelis muscle)

यहां पर अभिघात होने पर अपांगदेशीय रक्तवाहिनियों के अभिहत होने से तथा दृष्टि नाड़ी के अभिहत होने से अंधापन तथा दृष्टि की क्षीणता होती है।

प्रतिकार—नेत्रपीड़ा शान्ति के लिये धाराचिकित्सा करें। वेदनाहर तथा नेत्रप्रसादक औषधों के क्वाथ से नेत्राभिषिञ्चन करें। एतदर्थ निम्न लेप दें;—

हरिद्रा, रसौंत, हर्रे, आँरा, बहेड़ा, फिटकिरी, अहिफेन, जेठमीधु, इन सब को सम भाग लेकर पीस कर नेत्र पर लेप करें।

४ आवर्त्त मर्म—भौहों (के पुच्छान्त) के ऊपर निम्न भागों में आवर्त्त नामक मर्म है। यह संधिमर्म है और इसकी गणना वैकल्यकर मर्मों में है। इसकी मोटाई आधा अङ्गुल अर्थात् ½ इञ्च है। यहां पर अभिघात होने (चोट लगने) से अन्धापन और दृष्टि की क्षीणता होती है।

"भ्रुवोरुपरि निम्नयोरावर्त्तौ नाम, तत्राप्यान्ध्यं दृष्ट्युपघातो वा।"
(सु० शा० ६)।

संधिमर्मणी अर्धाङ्गुले वैकल्यकारिणी च।" (डल्हण)

रचना—गण्डास्थि, पुरःकपाल और जतुकास्थि के संधि स्थान (Joints of Frontal molar aud Sphenoid bone) पर यह मर्म होता है। इस मर्म की स्थिति मस्तुलुङ्ग के पुरःखण्ड पर भ्रूगर्त के ऊपर दोनों पार्श्व में, जतुकास्थि के लघु पक्ष के साथ मिलने वाले नेत्र पटल के पश्चात् किनारे के संधि

स्थल पर है। यहां पर अभिघात होने से दृष्टि में विकार आ जाता है तथा अन्धापन भी हो जाता है।

प्रतिकार—वेदना शान्ति के लिये वेदनापह लेप करें। शोध के लिये शोथहर लेप करें

लेप—गुडूची, गोजिह्वा, लक्ष्मणामूल, इनका स्वरस ले और नगरमोथा, कुलथी को उनके स्वरस में पीसकर घृत मिलाकर लेप करें। वेदना तथा शोथ शान्ति के बाद नेत्र तर्पण करें। सुश्रुतोक्त नेत्राभिघात की चिकित्सा करें।

५—शंखमर्म—भौहों के पुच्छान्त के ऊपर कान और ललाट के बीच में 'शंख' नामक मर्म है। यह अस्थिमर्म है और इसकी गणना सद्यःप्राणहर मर्मों में है। इसकी मोटाई आधा अंगुल अर्थात् ½ इञ्च है। यहाँ पर चोट लगने से तत्काल मृत्यु हो जाती है।

"भ्रुवोः पुच्छान्तयोरुपरि कर्णललाटयोर्मध्ये शंखौ नाम, तत्र सद्योमरणम्" । (सु. शा. ६)।

अस्थिमर्मणी, अर्धाङ्गुले सद्यःप्राणहरे च ॥" (डल्हण)

रचना—शंख मर्म शंखास्थि का वह भाग है जिस को कनपटी (Temporal) कहते हैं। इस प्रदेश के ऊपर अनुशंखा उत्ताना (Superficial Temporal) और शंखस्थि के भीतरी पृष्ठ भाग पर मस्तिष्क त्रृतिका मध्यमा (Midle Meningeal) नाम की धमनियाँ होती हैं। अतः इस मर्म पर आघात होने से स्तब्धता के कारण शीघ्र (तत्काल) मृत्यु हो सकती है, किंवा भीतरी धमनी टूटने के कारण मस्तिष्क में रक्तस्राव जन्य दवाव (Compression) से मृत्यु हो सकती है। शंखास्थि के इस भाग पर अस्थि इतनी पतली होती है कि साधारण अभिघात से भी भीतरी भाग पर आघात पहुँच सकता है और मस्तिष्क के मूल भाग पर, जहाँ नाड़ियों का केन्द्र है थोड़ा भी आघात होने से शीघ्र मृत्यु हो सकती है।

प्रतिकार—सर्व प्रथम स्तब्धता को रोकने के लिये वेदनापह औषधों का प्रयोग करना चाहिये। पश्चात् संज्ञास्थापनार्थ चरकोक्त संज्ञास्थापनीयगण

कषाय के अनुपान से चतुर्मुख चिन्तामणि रस का प्रयोग करें। यदि धमनियों के फटने से रक्त का दबाव (Compression) हो गया हो तो उसे दूर करने का प्रयत्न करें। इस कार्य के लिये शिरश्छेद भी करना पड़ सकता है।

६—उत्क्षेप मर्म—शंख प्रदेश के ऊपर केश समाप्त होने के स्थान पर 'उत्क्षेप' नामक मर्म है। यह स्नायु मर्म है और इसकी गणना विशल्यघ्न मर्मों में है। इसका प्रमाण अर्धाङ्गुल अर्थात् ½ इञ्च है। यहाँ पर यदि कोई शल्य चुभ जाय तो शल्य के साथ बचता है अथवा कुछ काल बाद वहाँ पर पाक उत्पन्न हो जाने पर यदि शल्य (पूय के साथ) निकल जाय तो भी बचता है, परन्तु शल्य चुभते ही शल्य को यदि निकाल दिया जाय तो मनुष्य नहीं बचता।

"शंखयोरुपरि केशान्त उत्क्षेपौ नाम, तत्र सशल्यो जीवति पाकात् पतितशल्यो वा, नोद्धृतशल्यः।" (सु. शा. ६)।

"स्नायुमर्मणी अर्धाङ्गुले विशल्यप्राणहरे च। (डल्हण)

रचना—इस मर्म से शंखस्थान की सावरण पेशी (Temporal Facia & Muscle) का बोध होता है। इसके अतिरिक्त इस मर्म की रचना में शंखानुगा धमनी उत्ताना की शाखाएँ (Perestal branches of the Superficial Temporal artery) गण्डोत्तर शंखानुगा नाड़ी (Zygomatic temporal nerve) और मस्तिष्क तथा उसके आवरण (The brain with its Covering) शंखास्थि के निम्न प्रदेश में जुड़े होते हैं।

प्रतिकार—इस मर्म पर शल्य से विद्ध होने पर चिकित्सक को चाहिये कि शल्यविद्ध स्थान को सुरक्षित रखे, जिससे शल्य शीघ्र निकलने न पावे। शल्य निष्कासन का प्रयत्न न करें। औषधों द्वारा तथा स्वयं पाक उत्पन्न होने देवे जिससे शल्य स्वयं निकल जाय। कुछ काल तक सशल्य छोड़ देने से विद्ध स्थान में स्वयं अंकुर उत्पन्न हो जाता है (Formation of Granulation Tissue) जिससे शल्यकृत छिद्र पर एक बांध बन जाता है जो शल्य

विद्धप्राणी की रक्षा करता है। यदि उक्त शल्य को शीघ्र बलपूर्वक निकाल लिया जाय तो शीघ्र ही शल्य विद्ध प्राणी की, अकस्मात् नाड़ी शक्ति (Nervous energy) के क्षीण होने से मृत्यु हो जाती है। अतः शल्य को कभी निकालने की चेष्टा न करे। जब शोथ उत्पन्न हो जाय तो उसे पकाने का प्रयत्न करना चाहिये। शेष चिकित्सा शंख मर्म के अभिघातवत्।

७—**स्थपनी मर्म**—दोनों भौहों के बीच में 'स्थपनी' नामक मर्म है। यह सिरा मर्म है और इसकी गणना विशल्यघ्न मर्मों में है। इसकी मोटाई आधा अंगुल अर्थात $\frac{1}{2}$ इञ्च है। यहां पर शल्यविद्ध होने से उत्क्षेप मर्मवत् परिणाम होता है।

"**भ्रुवोर्मध्ये स्थपनी नाम, तत्रोत्क्षेपवत्**। (सु० शा० ६)।

"**सिरामर्म अर्धाङ्गुलं विशल्यघ्नं च**।" (डल्हण)

इस मर्म की संज्ञा कोषों में कूर्च भी की गई है :—यथा–'कूर्चमत्री भ्रुवोर्मध्ये' (अमरकोष)। अंग्रेजी में इसको ग्लबेला (Glabelle) कहा है।

रचना—इस मर्म स्थान पर ललाटिका सिरा (Frontalvein) और दोनों ओर की ललटिका सिराओं को जोड़ने वाली सिरा (Nasal arch) होती है। स्थपनी के पीछे ललाट कोटर (Frontal sinus) होता है।

A vein from the nose entering through the Foramen caecun where the sagittal sulcus end Santeriorly joins the superior sagittal sulcus.

इस मर्म पर शल्यविद्ध होने पर भी वही परिणाम होता है जो उत्क्षेप मर्म पर विद्ध होने से होता है। अतः यहां के शल्य को भी सद्यः निकालने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। शोथ उत्पन्न होने पर उसे पकाने का ही यत्न करना चाहिये जिससे शल्य पूय के साथ स्वयं निकल जाय। यह सिरा मर्म है अतः शल्य निकालने पर शल्य से विद्ध ललाट सिराओं से रक्तस्राव अत्यधिक होने लगता है जिससे मृत्यु हो जाती है।

प्रतिकार—सबसे प्रधान तथा आवश्यक प्रतिकार यह है कि इस मर्म के

आहत होने पर रोगी को इस प्रकार आराम से रखे कि शल्य निकलने न पावे। एवम् उत्क्षेपवत् चिकित्सा की व्यवस्था करें। स्तब्धता से रक्षा करने के लिये वेदनापह औषधों का प्रयोग करें।

८—सीमन्त मर्म—शिर की खोपड़ी में विभाग करने वाली 'सीमन्त' नामक पांच संधियां संधि मर्म के नाम से प्रख्यात हैं। यह कालान्तर प्राणहर मर्म है और इनकी दीर्घता चार अंगुल अर्थात् ४ इञ्च है। यहां पर अभिघात होने पर उन्माद, भीति, चित्तनाश से मृत्यु होती है।

"पञ्च संधयः शिरसि विभक्ताः सीमन्ता नाम, तत्रोन्मादभयचित्तनाशैर्मरणम्" (सु० शा० ६)।

इमानि संधिमर्माणि चतुरङ्गुलप्रमाणानि कालान्तरप्राणहराणि च।" (डल्हण)

रचना—इस मर्म के निर्माण में निम्न अङ्ग जुड़ते हैं :—

(१) मध्य कपालीय सीमन्त (Sagittal suture) एक।
(२) पार्श्व कपालीय सीमन्त (Pariatal suture) दो।
(३) पश्चिम कपालीय सीमन्त (Occipital suture) एक।
(४) पुरः कपालीय सीमन्त। (Frontal suture) एक।

शिर पर आघात होने से निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं:—

"शिरस्यभिहते मन्यास्तम्भार्दितचक्षुर्विभ्रममोहवेष्टनचेष्टानाशकासश्वासहनुग्रहमूकगद्गदत्वाक्षिनिमीलनगण्डस्पन्दनजृम्भणलालास्रावस्वरहानिवदनजिह्मत्वादीनि।" (च. सि. ९)

ये सभी लक्षण मस्तिष्क संघट्टन (Cerebral Concussion), मस्तिष्कपीडन (Compression), मस्तिष्कक्षोभ (Cerebralirritation) के कारण हुआ करते हैं और इन्हीं कारणों से कालन्तर से मनुष्यों की मृत्यु होती है।

प्रतिकार—सर्व प्रथम स्तब्धता से रक्षा करने के लिये वेदनापह औषधों का प्रयोग करें। बाद अभिहत स्थानों का निरीक्षण कर उन्हें शुचि प्रक्षालन आदि

से स्वच्छ कर सुबन्ध करे। परन्तु इन सभी कर्मों में पूर्ण सावधानी रखे जिससे रोगी को किसी प्रकार कष्ट न पहुँचे। पूर्ण विश्राम के साथ रखें। नेत्रों की परीक्षा कर मस्तिष्क संघट्टन आदि का पता लगावे। यदि मस्तिष्क संघट्टन आदि होगा तथा उष्णीष प्रदेशीय रक्तस्राव होगा (pontine hremorrhage) तो आँख की पुतली अत्यधिक विस्तारित हो जायगी। इस प्रकार अभिघात जन्य उपद्रवों की सम्यक् परीक्षा कर उपद्रव के अनुसार चिकित्सा करें।

९—**शृंगाटक मर्म**—नाक, कान, नेत्र और जिह्वा, इनको सन्तर्पण करने वाली सिराओं के मध्य में 'शृङ्गाटक' नामक सिरासन्निपात है। ये चार मर्म हैं और इनकी गणना सिरा मर्मों में है। वाग्भट ने इन्हें धमनी मर्म कहा है। ये सद्यःप्राणहर है और इनकी मोटाई चार अङ्गुल या ४ इञ्च है। यहां पर वेध होने से तत्काल मृत्यु होती है।

"घ्राण श्रोत्राक्षि जिह्वा सन्तर्पणीनां सिराणां मध्ये सिरासन्निपातः 'शृङ्गाटकानि' तानि चत्वारि मर्माणि, तत्रापि सद्यो मरणम्। (सु.शा. ६)

इमानि सिरा मर्माणि चतुरङ्गुलप्रमाणानि (डल्हण)

रचना—मस्तिष्क मूल में त्रिकोणिके और त्रिकोणिकायोजन्यौ नामक सिरा सरित है। यही शृङ्गाटक मर्म का स्थान प्रतीत होता है। इस में आखों की सिराएँ सिधी मिलती हैं और नासा कर्ण की अप्रत्यक्षतया मिलती हैं। इनका आकार भी त्रिकोणा होता है। शिर के ऊपर शिर के पीछे, हनुके ऊपर जोड़ का आघात होने से करोटि मूलास्थिभङ्ग होता है जिस से शृङ्गाटक तथा सुषुम्नाशीर्षक इत्यादि विदीर्ण हो कर मृत्यु होती है। अष्टाङ्गहृदय में शृङ्गाटक को धमनी मर्म में गिनाया है। इस मर्म में निम्न अङ्ग जुड़ते हैं:—

(१) मस्तिष्क के केन्द्र यथा—

(क) वाणी केन्द्र (Buccal centre)

(ख) दृष्टि केन्द्र (Visuo sensary centres, visuo psychic centre)

(ग) श्रोत्र केन्द्र (Hearing centre)

(घ) स्वाद (रस) और गन्ध केन्द्र (Test & Smell centre)

अतः इस मर्म के अभिघात से उक्त किसी केन्द्र के आहत होने पर समीपवर्त्ती मस्तिष्कधारीय नाडीचक्रों का आहत होना सर्वथा सम्भव है जिससे मनुष्य की मृत्यु हो जाती है।

प्रतिकार—यह सद्योघाती मर्म है। अतः प्रबल आघात होने पर, चिकित्सा का प्रायः अवसर नहीं प्राप्त होता। स्वल्प आघात होने पर लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिये।

१०-अधिपति मर्म—मस्तिष्क के भीतर ऊपर की ओर सिरा और संधियों का सन्निपात है जो बालों के आवर्त से शिर के उपरि भाग पर (जहाँ शिखा रखते हैं) परिलक्षित होता है। यही अधिपति मर्म का स्थान है। यह संधि मर्म है और सद्यःप्राण हर है। इसका प्रमाण अर्धाङ्गुल अर्थात् ½ इञ्च है। यहाँ पर अभिघात होने से तत्काल मृत्यु हो जाती है।

"मस्तकाभ्यन्तरत उपरिष्ठात् सिरासंधिसन्निपातो रोमावर्त्तोऽधिपतिः, तत्रापि सद्य एव।" (सु. शा. ६)।

एतत् संधिमर्म अर्धाङ्गुलप्रमाणं च।" (डल्हण)

रचना—अधिपति मर्म खोपड़ी के भीतर सिराओं के सन्निपात से बना हुआ है। यह संधि मर्म है। इस आभ्यन्तरीय मर्म की बाहर का चिह्न रोमावर्त्त, याने जहाँ पर शिर के बालों में आवर्त्त दिखाई देता है वह स्थान है। इस वर्णन के अनुसार अधिपति मर्म प्रत्यक्ष शारीर की दृष्टि से मस्तिष्क वृत्ति में पीछे की ओर मिलने वाले सिरासरित् सन्निपात (Confluence of sinuses or Torcular Herophili) का बोध होता है। इस सम्बन्धमें म. म. गणनाथसेन ने लिखा है—**"महासिरावर्त्तोनाम पूर्वोक्तानां पञ्चानामपि सिरासरितां संधिसन्निपातः पश्चिमकपालस्याभ्यन्तरतलकेन्द्रस्थः। तमधिपतिसंज्ञं सद्योमारकं मर्मेति वर्णयन्ति प्राज्ञाः।"** परन्तु अस्थि विभाग में पश्चिम कपाल और पार्श्व कपालों के सन्धिस्थान को (Posterior Fontallal) अधिपति मर्म बतलाये हैं—**"पश्चिममध्यसीमान्तयोस्तु**

संधिस्थलं शिवरंध्रमधिपतिरंध्रं वा नाम तदाख्यमर्मधारणात् ।" (प्रत्यक्षशारीर)। यद्यपि ये दोनों स्थान वहुत समीप हैं, तथापि शिवरंध्र में सिराओं के संधियों का सन्निपात न होने से उसको अधिपति मर्म मानना उचित नहीं है। इस मर्म का स्थान कुछ नीचे अवटु के पास भीतर होता है। इस मर्म की रचना इस प्रकार है:—

(१) शुषुम्ना शीर्षक अपने प्राण केन्द्रों सहित।

(२) हार्दिक केन्द्र (Cardiac Centre)

(३) प्रश्वास केन्द्र (Respiratory Centre)

(४) संप्रचेष्टनी नाड़ी केन्द्र (Vaso motar Centre)

(५) अन्य केन्द्र।

(६) दश शीर्षण्य नाड़ियों का मूल स्थान।

जीव केन्द्र सहित सुषुम्ना शीर्षक तथा अन्य केन्द्रों एवं दश शीर्षण्य नाड़ियों के उद्भव स्थान होने से इस मर्म पर अभिघात होने पर रक्तसंवहन, प्रश्वास, तथा रक्तचाप के बन्द हो जाने से सद्यः प्राणनाश हो जाता है।

प्रतिकार—यह सद्योघाती मर्म है अतः यहां अभिघात होने से चिकित्सा का प्रायः अवसर नहीं मिलता। यदि आघात स्वल्प हो तो अभिघातोत्तर लक्षणों के अनुसार कुछ चिकित्सा की जा सकती है।

वेदना शान्ति के लिये—वेदनाहर औषधों का व्यवहार करना चाहिये। संज्ञा लाने के लिये संज्ञा स्थापनीय गण का कषाय, बृहत् वातचिन्तामणि, योगेन्द्र रस, तथा चतुर्मुख चिन्तामणि के साथ देवें।

शोथ शान्ति के लिये शोथहर लेपों का उपयोग करना चाहिये। इसके अतिरिक्त अन्य उपद्रवों की चिकित्सा उपद्रव के अनुसार ही होगी।

—

सातवां अध्याय

"मर्माभिघातश्च न कश्चिदस्ति योऽल्पात्ययो वापि निरत्ययो वा ।
प्रायेण मर्मस्वभिताडितास्तु वैकल्यमृच्छन्त्यथवा म्रियन्ते ॥
मर्माण्यधिष्ठाय हि ये विकारा मूर्च्छन्ति काये विविधा नराणाम् ।
प्रायेण ते कृच्छ्रतमा भवन्ति नरस्य यत्नैरपि साध्यमानाः ॥"

(सु. शा. ६)

ऐसा कोइ मर्मों का आघात नहीं है जो निरत्यय अथवा स्वल्पात्यय (विना अनिष्ट परिणाम वाला अथवा कम अनिष्ट परिणाम वाला) हो । मर्मों के सभी प्रकार के अभिघात प्रायः प्राणनाश करने वाले अथवा अंग वैकल्योत्पादक होते हैं । अतः मर्मों का आश्रय करके मनुष्यों के शरीर में जितने विकार उत्पन्न होते हैं वे निश्चय रूप से, अनेक यत्न करने पर भी प्रायः कृच्छ्रतम होते हैं ।

पूर्वोक्त ६ अध्यायों में मर्मों का परिचय पूर्वक उनपर अभिघात होने के जो परिणाम होता है उसका संक्षेप में दिग्दर्शन कराया गया है । साथ ही अभिघात से उत्पन्न विकारों के प्रतिकार का भी संकेत यत्र तत्र किया गया है । इस संकेत में प्रायः सर्वत्र लक्षणों के अनुसार चिकित्सा करने का आदेश दिया गया है । अतः मर्माभिघात से होने वाले लक्षणों का परिचय पूर्वक प्रतिकार जानना आवश्यक है । प्रस्तुत प्रकरण में उक्त विषय का वर्णन ही अभिप्रेत है । मर्मों के अभिघात किस प्रकार अनिष्टोत्पादक होते हैं तथा प्राणियों के प्राणसहारक होते हैं, यह उपर्युक्त श्लोक से तथा पूर्वोक्त ६ अध्यायों से स्पष्ट हो जाता है । अस्तु ।

मर्मों की व्याख्या करते समय यह प्रतिपादित हो चुका है कि शरीर के मर्मातिरिक्त अंगो पर अभिघात होने से जो परिणाम होते हैं उससे आत्यधिक अनिष्ट परिणाम मर्मों पर उसी अंश में आघात होने से होता है । मानव शरीर में विकार साधारणतः दो कारणों से उत्पन्न हुआ करते हैं; निज कारणों से तथा आगन्तुक कारणों से । ये दोनों प्रकार के कारणों का कारण प्रधानतः असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग, प्रज्ञापराध और परिणाम ये, तीन हुआ करते हैं । अभिघात आगन्तुक

कारणों में है। यह अभिघात अभिघातक यंत्रों के अनुसार नानाविध हो सकता है। अतः उनकी चिकित्सा भी नानाविध होगी। साधारणतः सर्व प्रकार के अभिघातों का प्रतिकार पित्तवत् शीत क्रियावधारण पूर्वक संधान कर मधु घृतादि का प्रयोग शास्त्रों में उपदिष्ट है। जैसे—"आगन्तुकारणे तत्कालमेव क्षतोष्मणः प्रसृतस्योपशमार्थे पित्तवच्छीतक्रियावधारणविधिर्विशेषः सन्धानार्थञ्च मधुघृतप्रयोग इति।" (सु. चि. १)। इसके बाद तज्जन्य दोषोपप्लवों के अनुसार शारीरिक विकारों का प्रतिकार करना उचित है।

पूर्वोक्त अध्यायों में अभिघात के पश्चात् सर्व प्रथम प्राथमिक चिकित्सा करने का आदेश दिया गया है अतः प्राथमिक चिकित्सा का वर्णन अत्यावश्यक है—प्राथमिक चिकित्सा का अभिप्राय यह है कि-तत्काल अर्थात् घटना के होने काल में यथाशीघ्र आवश्यक उपयुक्त तथा प्राप्य साधनों से रोगी के जीवन को संशय से सुरक्षित करना और यथासाध्य अभिघातजन्य वेदनाओं को शान्त कर स्तब्धता जन्य दुष्परिणाम से बचाना। इसके अतिरिक्त क्षतविक्षत स्थान से निकले हुये जीवस्थान रक्त को बंद कर प्राण की रक्षा करना इत्यादि प्राथमिक चिकित्सा के अंग हैं। मानव शरीर के अन्दर रक्त ही प्राण है यह सर्वत्र आयुर्वेदीय साहित्य में स्पष्ट रूपेण प्रतिपादित है। जैसे—

"देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणैव धार्यते।
तस्मात् यत्नेन संरक्ष्यं रक्तं जीव इति स्थितिः"॥ (सु. सू. १४)

इस प्रकार प्राथमिक चिकित्सा के अन्दर निम्न प्रतिकार सामान्यतः तथा संक्षेपतः समाविष्ट होते हैं।

(१) पूर्ण विश्राम पूर्वक रोगी को शय्या आदि पर रखना। (२) वेदनोपशान्ति के निमित्त वेदनाहर आभ्यन्तर तथा बाह्य उपचारों का करना (३) स्तब्धता से सुरक्षित करने के लिये [औषधोपचार। (४) रक्त-स्राव को रोकना। (५) संज्ञासंजननार्थ बाह्य तथा आभ्यन्तर उपचार।

उपर्युक्त प्रतिकारों को सम्पन्न करने के लिये चिकित्सक तथा परिचारक को पूर्ण सावधानी के साथ रोगी को यथासाध्य उसकी अवस्था को देख न्यूनातिन्यून

श्रम रोगी को देते हुए सूपस्थित तथा सुव्यवस्थित शय्या पर आसीन करें। पश्चात् वेदनोपशान्ति के निमित्त निम्न वेदनाहर कषाय तथा अन्य कल्पों का प्रयोग करें।

(१) चरकोक्त वेदना-स्थापनीय कषाय :—

"शाल-कट्फल-कदंब-पद्मक-तुम्ब-मोंचरस-शिरीष-वंजुलै-लवालुका-शोका इति दशेमानि वेदनास्थापनीयानि भवन्ति।"

(२) मौर्फिया और अट्रोपीन की सूचिवस्ति। इस औषध के प्रयोग में पूर्ण सावधानी रखें। इसकी मात्रा $\frac{१}{८}$ से $\frac{१}{२}$ ग्रेन तक ही है। मात्रा का निश्चय रोगी के बल तथा वय के अनुसार करें। मौरफीन के अनिष्ट प्रभाव को रोकने के लिये उसके साथ आट्रोपीन का संयोग श्रेयष्कर होता है। इसकी मात्रा—$\frac{१}{२००}$ से $\frac{१}{१००}$ ग्रेन तक की है। सामान्यतः इन दोनों औषधों की सम्मिलित मात्रा आम्पुल में तथा टिकिया के रूप में बनी बनाई आती है। जो इस प्रकार होता है। मौर्फीन और आट्रोपीन प्रत्येक सी. सी में—मौर्फीन सल्फ-$\frac{१}{२}$ ग्रेन और आट्रोपीन सल्फ १०० ग्रेन। यह इसकी पूर्ण मात्रा है। इसकी अल्प मात्रा भी होती है।

(३)	गोजिह्वा स्वरस—	१	सबको मिलाकर खांड मिलाकर पिलावे।
	शतावरी ,, —	१	
	दूध	$\frac{१}{४}$	
	उशीर क्वाथ	२	

(४) स्त्रीदुग्ध में नवनीत मिलाकर शिर पर लेप करें।

(५) जेठी मधु से सिद्ध किया हुआ घृत कोष्ण दे दें।

"या वेदना शस्त्रनिपातजाता तीव्रा शरीरं प्रदुनोति जन्तोः।
घृतेन सा शान्तिमुपैति सिक्ता कोष्णेन यष्टीमधुकान्वितेन॥"

(सुश्रुत)

(६) आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में सम्प्रति पीड़ा की शान्ति के लिये तीन तरह से विचार करते हैं। रोगी की अवस्था देखकर वेदनापह औषधों का प्रयोग करना चाहिये। इसमें पीड़ा के कारणों का विचार परमावश्यक है। यदि

पीड़ा प्रबल अभिघात से स्थानीय विकृति के कारण है तो ऐसी अवस्था में अहिफेन के योगों का प्रयोग उचित है। एतदर्थ उक्त मौर्फिया का प्रयोग करते हैं। आजकल मौर्फिया के स्थान पर 'फाइसेप्टोन' नामक औषध अधिक उपयोगी तथा कम व्यापद्-युक्त समझा जाता है। यदि रोगी की पीड़ा अन्य कारणों से चाहे वह मानसिक उत्तेजना एवं नाड़ियों की उत्तेजना से हुई होती है तो नाड़ी अवसादक (Nervous sedative) औषधों का प्रयोग करते हैं जैसे 'वारवीटोन समुदाय के योग आदि। सम्प्रति सेराडोन, ल्युमिनल आदि का व्यवहार होता है। इसके अतिरिक्त अभिघात का प्रभाव जब हृदय पर विशेष होता है और तज्जन्य वेदना एवं स्तब्धता की शंका होती है तब लवणजल-द्राक्षौज (Saline with Glucose) की सिराबस्ति देने से लाभ होता है।

(७) स्तब्धता से बचाने के लिये उपर्युक्त लवण जल और द्राक्षौज की सिराबस्ति देना अधिक लाभकर होता है। वृहत् वातचिन्तामणि. रसराज, योगेन्द्ररस तथा मकरध्वज आदि का प्रयोग हितकर होता है।

(८) रक्तस्राव को रोकने के लिये निम्न उपाय करना चाहिये।

चतुर्विधं यदेतद्धि रुधिरस्य निवारणम्।
सन्धान स्कन्दनं चैव पाचनं दहनं तथा॥ (सुश्रुत सू० १४)

इसका वर्णन पहले किया जा चुका है।

आधुनिक शस्त्र चिकित्सा विज्ञान में रक्तस्राव को रोकने के लिये जो क्रियायें होती है, उन्हें दो भागों में विभक्त किया गया है। (१) प्राकृतिक उपायों से रक्त को रोकना और (२) कृत्रिम उपायों से रक्त को रोकना।

प्रकृतिक उपायों द्वारा रक्त को रोकना—

(क) अस्थायी रूप से—(१) रक्त को स्कन्दित (Coagulate) करने का अवसर प्रदान करना। यह कार्य रक्त में वर्त्तमान सुधांश की मात्रा पर निर्भर करता है। यदि रक्त के अन्दर सुधांश (Calcium) की मात्रा पर्याप्त है तो साधारण रक्तस्राव रक्तस्कन्दन से स्वयं बन्द हो जाता है। हेमोफीलिया नामक व्याधि से दुष्ट पुरुषों का रक्त शीघ्र स्कन्दित नहीं होने से रक्तस्राव को रोकना

कठिन हो जाता है। रक्ताल्पता भी रक्तस्कन्दन में साहाय्य कुछ हद तक प्रदान करता है।

(२) हृदय के कार्य्यों की मन्दता भी रक्तस्राव को रोकने में सहायक परिस्थिति है। यह परिस्थिति मस्तिष्क में रक्ताल्पता (पाण्डु) के कारण उत्पन्न होती है। यही कारण है कि रक्तस्राव की अवस्था में हृदयोत्तेजक औषधों का देना निषेध है।

(३) रक्तवाहिनियों में तथा रक्तवाहिनियों के आसपास में परिवर्तन होने से भी रक्तस्राव स्वयं बन्द हो जाता है। यह अवस्था धमनियों के संकोच तथा क्षत स्थान पर रक्त के स्कन्दित हो जाने से एवं वहां के पार्श्ववर्त्ती तन्तुओं में संकोच उत्पन्न होने से हो जाती है।

(ख) स्थायी रूप से रक्त का बंद होना रक्त वाहिनियों तथा रक्त के प्राकृतिक क्षत रोहण क्रिया पर निर्भर करता है। रक्त के स्कन्दन होने से धमनियां संकुचित होती हैं जिससे रक्तस्राव बन्द हो जाता है। अभिघात होने पर अभिहत स्थान-पर रक्त के जमाव के कारण उस स्थान के पोषण तथा रक्त के लिये नूतन आवस्थिनी रक्तवाहिनियां (Plastic artery) उत्पन्न हो जाती है जिसके द्वारा उस स्थल पर छत्रकणों का पहुंच होता है और उनकी रक्षा की क्रिया प्रारम्भ होती है। इस प्रकार छत्रकण स्थानीय रक्तस्कन्दन को तोड़ता है और पुनः रक्त-संचारार्थ रक्तवाहिनियों के मार्ग को प्रशस्त करने लगता है! क्षतस्थान पर रोहण क्रिया प्रारम्भ होती है, जिनसे क्षत का मुख बन्द हो जाता है।

कृत्रिम उपायों द्वारा रक्तस्राव को रोकना—

(क) स्थान परिवर्तन।

(ख) शीत क्रिया—बरफ, जलाभिसिञ्चन, शीतकषाय परिषेक। ठण्ढी हवा।

(ग) अत्युष्ण जल (Hot water १३०° से १६०° F.) से स्थानीय अभिषेक। इस क्रिया से अनैच्छिक मांसपेशियों के तंतुओं में उत्तेजना होती है, जिसका प्रभाव रक्तवाहिनियों के भित्ति पर पड़ता है और रक्तवाहिनीगत रक्त का अव्युमेन जमने लगता है।

(घ) अग्निदग्ध (Cauterisation) इसका वर्णन पहले हो चुका है।

(ङ) औषधों द्वारा (Chemical agent)-रक्तस्कन्दन औषधों द्वारा जैसे—टैनिक एसिड, गैलिकएसिड, फिटकिरी का चूर्ण, रजतनत्रित। इन औषधों का प्रयोग अवचूर्णन, प्रघर्षण तथा रूई या कपड़े में रखकर क्षत स्थान पर रखने से होता है।

(च) रक्तस्राव के स्थान को साक्षात् रूप से दबाना—(Direct pressure)—रक्तस्राव के स्थान पर अङ्गुली तथा कपड़े की पट्टी बना कर इस प्रकार दबा दे कि रक्तवाहिनी दब जाय। इस क्रिया से साधारण रक्त का स्राव (Oozing) जो पतली रक्तवाहिनियों से होता है, बन्द हो जाता है।

(छ) बन्ध द्वारा दबाव—रक्तस्राव के स्थान के ऊपर हृदय की ओर इस प्रकार बांधे कि क्षत स्थान पर जानेवाली रक्तवाहिनियों का रक्तसंचार रुक जाय। एतदर्थ 'टुर्नीकेट' नाम के यन्त्र का प्रयोग किया जाता है।

(ज) संदंश यन्त्र द्वारा दबाव (Forcipressure) धमनी संदंश यन्त्र से रक्तवाहिनी को पकड़ कर दबा दें। और उसे रेशम तथा नस से बांध दें।

(झ) बंध (Ligature)—रक्तवाहिनियों को पकड़ कर बांध दें।

रक्तस्राव को रोकने वाले औषध—

फिटकिरी, रजतनत्रित, टैनिकएसिड, गैलिक एसिड, मोचरस, लाक्षा, क्षीरी वृक्ष का कषाय, चमेली, दूब, उदुम्बरसार, माजूफल, विशल्यकर्णी, इत्यादि। ५ संज्ञा संजननार्थ-संज्ञास्थापनीयगण के औषधों के कषाय का प्रयोग करें।

"हिङ्गु—कैटर्या-रिमेद-वचा-चोरक-वयःस्था-गोलोमी-जटिला-पलङ्कषा-ऽशोक-रोहिण्य इति दशेमानि संज्ञास्थापनानि भवन्ति"।

(च० सू० ४।४८)

इसके अतिरिक्तसंज्ञासंजनक औषधों का नस्य देवें—

(क) द्रोणपुष्पी तथा शंखपुष्पी का स्वरस दोनों नासाओं में डाले। तथा रास्नादि मूल का प्रधमन नस्य देवें। केशरादि नस्य से भी अच्छा लाभ होता है।

संज्ञासंजननार्थ सेक, अवगाह, शीत-प्रदेह, व्यजन की हवा, शीतल जल पान, आदि का प्रयोग करें। तीक्ष्ण अंजन तथा नस्यों के प्रयोग से भी संज्ञा लाभ होता है।

उपर्युक्त प्राथमिक चिकित्सा के बाद अभिहत स्थानों का सम्यग् निरीक्षण कर लाक्षणिक चिकित्सा करें।

शोथ की चिकित्सा—शास्त्रों में शोथशान्ति के लिये एकादश उपक्रमों का वर्णन हैं—जैसे—अपतर्पण-आलेप-पारिषेको-भ्यङ्ग-स्वेद-विम्लापन-उपनाह-पाचन-विस्रावण-स्नेह-वमन और विरेचन आदि। इसके बाद व्रण हो जाने पर व्रणों के ६० उपचारों को यथायोग्य करना चाहिये।

शोथहर लेप-(१)वृहत् पञ्चमूल के त्वक् तथा लघुपञ्च मूल को लेकर इनका क्काथ तैयार करें। पश्चात गंध विरोजा, करायल, नसादर और तूतिया को अग्नि पर पिघला कर एक स्थान में मिला दें और पकावे। जब यह पक कर तैयार हो जाय तो उसे उतार ले और पट्टी बनाकर लेप चढ़ावे।

(२) सुरदारु लेप—देवदारु, सोंठ और नसादर सम भाग लेकर जल में पीस कर कोष्ण लेप करें।

(३) आयन्टी फ्लेमीन, बाहफ्लोजीस्टीन तथा अन्य शोथहर लेप आज कल बना बनाया प्राप्त होता है, उसका लेप आवश्यकतानुसार कर सकते हैं।

वेदना तथा शोथ की शान्ति के लिये निम्न लेप चढ़ावें—

(क) हरिद्रा चूर्ण, सुधा, गैरिक, चोटसज्जी इन्हें जल में घोल कर गर्म कर लेप करें।

(ख) इक्थीयल-वेलेडोना का लेप लगाने से भी लाभ होता है।

(ग) मोसब्बर और शिलाजतु समान भाग मिला कर लेप करने से वेदना और शोथ दोनों की शान्ति होती है।

(घ) शोथ युक्त स्थान को प्याज तथा निम्बु का सेंक देवे।

(च) निर्गुण्डी, पुनर्नवा, सहिजना के पत्तों का उपनाह शोथ तथा वेदना दोनों में लाभ करता है।

शोथशान्ति के उपरान्त अभिहत स्थान पर वातहर तैलों का अभ्यङ्ग करना चाहिये। एतदर्थ सैंधवादितैल, लाक्षादितैल, तथा नारायणतैल अधिक लाभप्रद होता है।

इसके अतिरिक्त अभिहत स्थान को देखे और अभिघात के अनुसार चूर्णित ग्रथित, भग्न, विश्लिष्ट, पिच्चित, घृष्ट, विद्ध, आदि के अनुसार उसकी चिकित्सा करें। अभिहत स्थान को पूर्ण विश्राम में रखने के लिये उसे आवश्यकतानुसार यथायोग्य बन्ध दे दें। एतदर्थ नानाविध औषधों का भी उपयोग होता है। उसे उपयोग में लावें। कईबार अभिहत स्थान को श्रम से बचाने के लिये पेरीस प्लास्टर देकर बंध करना श्रेयस्कर होता है। शोथ स्थान में पाक को रोकने के लिये औषधों का आभ्यन्तर प्रयोग भी किया जाता है। आजकल एतदर्थ सल्फा समुदाय के औषधों का प्रयोग आधुनिक वैद्य करते हैं।

बृहत् मर्म गुटिका—(सहस्रयोग से उद्धृत)

१—(क) (१) विदारी सत्त्व २० तो०
(२) जीवन्ती ,,
(३) शतावरी ,,
(४) मुस्तक ,,
(५) वराहीकन्द ,,
(६) तुगाक्षीरीसत्त्व २० तोला
(७) आमलकी ,,
(८) सारिवा ,,
(९) गुडूची ,,
(१०) दूर्वा ,,

(ख) (१) यष्टिमधु ~~५० तो०~~ पल 25 tolas
(२) चन्दन ,,
(३) रक्त चन्दन ,,

२—(१) सहस्रवेधी २½ तो०
(२) कन्नरम् ,,
(३) शिलाजतु ,,
(४) क्षीर निर्विषी २½ तोला
(५) गरुड़ पुच्छ ,, (गरुड़ पञ्च (MALABAR))

प्रथम द्वितीय को चूर्ण कर निम्न कषाय में घोंटे :—

ग. प्रसारिणी, मूर्वा, चतुःक्षीरीत्वक् की कली, कोम्मुया (मालावार), पोन्ना-कोडुप्पा मकानी (मालावार), निर्मली, गोक्षुर, सुगन्धवाला, उशीर, उपर्युक्त औषध

प्रत्येक १० तो० लेवे और १२ प्रस्थ जल में देकर क्वाथ करे, अष्टमांश शेष रहने पर इस कषाय में उक्त औषधों को घोंटे। बाद दूसरा कषाय बनावें।

नोट—उक्त मालावारी द्रव्यों के संस्कृत नाम नहीं उपलब्ध होते अतः उन्हें उसी नाम से मालावार से मगावें।

३—(१) चतुःक्षीरीत्वक्
(२) लोध्र
(३) जम्बुत्वक्
(४) पुलानी संबोलम् (मालावार)
(५) पोम्युत्वक् (मालावार)
(६) करीमकरत्वक् ,,
(७) दारुहरिद्रात्वक् ,,
(८) पाषाणभेदमूल ४० तो०

१-७ को प्रत्येक का १० तोला लेकर ८ वें में मिला दें और १६ प्रस्थ जल में उबाले अष्टमांश शेष रहने पर उतार ले और पूर्वोक्त औषध को उसमें घोटें।

पुनः उक्त औषध को निम्न कषाय में घोंटें। माष, मुद्रा और एला। तीनों द्रव्यों को १०० तोला ले कषाय बनावे और पूर्ववत् घोंटे और आमलकी के बराबर गुटिका बना दे। इसका बाह्य प्रयोग निम्न द्रव्यों के साथ व्रणशोथ में किया जाता है—अण्डे की सफेदी, घी, दूध इत्यादि।

लघु मर्म गुटिका—(सहस्रयोग से उद्धृत)

१—(क) (१) आमलकीसत्व २० तो०
(२) शतावरीसत्व ,,
(३) गुडूचीसत्व ,,
(४) मुस्तकसत्व ,,
(५) मुसली ,,
(६) वनकन्द (अट्टुकिभांगु) २० तो
(७) अरारूट ,,
(८) चन्दन ,,
(९) रक्तचन्दन ,,
(१०) यष्टिमधु ,,

(ख) (१) कर्पूरम् ५ तो०
(२) शिलाजतु ,,

सभी द्रव्यों को मिलाकर चतुःक्षीरीवृक्षत्वक् कषाय में घोंटे। पुनः दोनों में से प्रत्येक का ८० तो० लेवें और कषाय बनावें।

२—(क) (१) दूर्वा २० तो०
(२) पाषाणभेद ,,
(३) प्रसारिणी ,,
(४) तृण पञ्चमूल ,,

(ख) (१) सुगन्धबाला २० तो०
(२) खश ,,
(३) गोक्षुर ,,
(४) निर्मली ,,

दोनों का कषाय बनावें।

३—(१) माष ८० तो०
(२) मुद्रा ,,

इनका भी कषाय बनावें।

दोनों कषायों को पृथक् २ बना लें। उपर्युक्त औषधों को प्रत्येक कषाय में बारी २ से घोंटे (भावना दें)। पश्चात् गुटिका बना लें। मात्रा—आमलकी प्रमाण। बाह्य प्रयोग। अनुपान-अण्डे की सफेदी, मक्खन, घी, दूध, शतधौतघृत इत्यादि। व्रणशोथ तथा व्रण में अवस्थानुसार।

इति शम्।

सौश्रुती

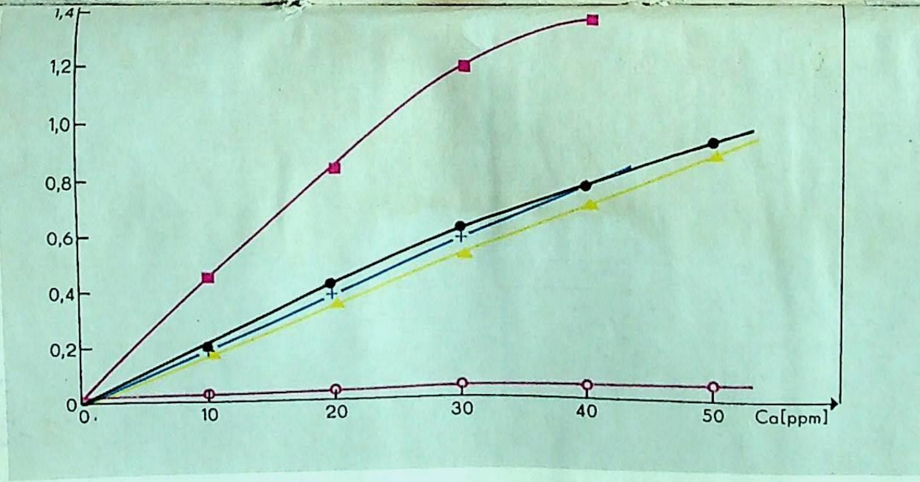
[A comprehensive treatise on ancient Indian Surgery mainly based on the classical medical work Sushruta Samhita]

ले०—**पं० रमानाथ द्विवेदी** एम. ए., ए. एम. एस., काशी विश्वविद्यालय के आयुर्वेद महाविद्यालय के अध्यापक और चिकित्सालय के हाउस फिज़िशियन।

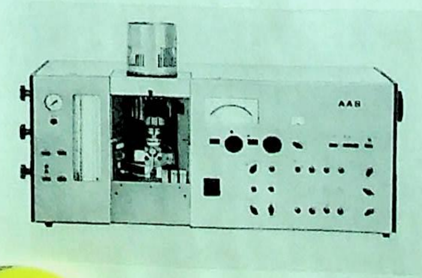
प्राचीन शल्यतंत्र (सर्जरी) पर लिखा हुआ यह विशद ग्रन्थ नाना दृष्टियों से बहुत महत्व पूर्ण है। इस विषय की सामग्री प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में बिखरी पड़ी है। इसका आधुनिक ढंग से अब तक संकलन और सम्पादन नहीं हुआ था। विषय क्रम के तारतम्य का अभाव और भाषा की कठिनता विद्यार्थी का रास्ता रोक खड़ी हो जाती है। फिर आधुनिककाल के विकसित और प्रगतिशील शल्य-तंत्र के साथ तुलना करके अब तक इस विषय का एक ठीक अनुशीलन न होने के कारण उसकी दुरुहता और भी बढ़ जाती है। इन कठिनाइयों को दृष्टि में रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक के विद्वान लेखक ने इस ग्रन्थ का निर्माण किया है। बहुत प्राचीन संहिताओं में बिखरी हुई समस्त सामग्रीको आधुनिक विज्ञान के आलोक में देखने का यह प्रयास बहुत ही ज्ञानवर्धक है साथ ही लेखक की रोचक शैली ने इसे बहुत सरल भी बना दिया है।

लेखक वर्षों से आयुर्वेद महाविद्यालय में अध्यापक हैं। विद्यार्थियों की कठिनाइयों का उन्हें पूर्ण अनुभव है और पुस्तक इस प्रकार लिखी गई है कि विद्यार्थी इससे प्रचुर लाभ उठा सकें। परन्तु लेखक ने साधारणपाठकों को भुला नहीं दिया है। साधारण पाठक भी इस ग्रंथ को पढ़कर अपने देश के शस्त्र कर्म विज्ञान का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकता है, उसे यंत्र, शस्त्र, क्षार, अग्नि और रक्तावसेचय आदिक ऐतिहासिक ज्ञान हो सकता है। फिर आधुनिक शिक्षा प्राप्त हुए शस्त्रचिकित्सकों को भी इस देश की समुन्नत विद्या का परिचय इस ग्रंथ से उन्हें अपने नवीन उपलब्ध ज्ञान का संशोधन और परिमार्जन करने का अवसर मिलेगा। लेखक अनुभवी चिकित्सक भी हैं और इस दिशा के अनुभूत ज्ञान का उपयोग उन्होंने प्रचुर मात्रा में किया है। इस प्रकार यह ग्रन्थ साधारण पाठकों, आयुर्वेद के विद्यार्थियों और आधुनिक शिक्षाप्राप्त सर्जनों के लिये समान भाव से उपयोगी है। इस विषय पर अपने ढंग की एक ही पुस्तक है। ७॥)

प्राप्तिस्थानम्–चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस सिटी।



3



our calcium was brought in for co
with this method as well. While ma
the flame conditions as well as the c
and sample solutions of the atomic
tion, measurements were made at 4
The results shown in Table 3 den
that equivalence exists between
methods for the determination of
in lubrication oils.

Summary

The results obtained when de
(with the aid of atomic absorption
metry) calcium, zinc and lead in lu
oils reveal that the JENA-made
Atomic Absorption Spectrophoto
also qualified for use in the mi
industry. Accurate and quick exec
the analyses comply with the demar
on a serial product control in the
lubricants.

The applicability of the analysis
cants is thus further extended, by
bination of atomic absorption a
photometry in one single instrumen

Reference

[1] B. WELZ: Atomabsorption
metrie. Weinheim 1972.

—	0.2 %

ng substances

ıantitative determination of metals ıting oils necessitates the use of alibrating curves, to be plotted with alibration substances.

ıllowing substances were tested:

nitrate – final concentration)

– Solvent acetic acid amyl ester

– Avoidance of chlorinous solvents

– Plotting a calibration curve using a substance similar to the sample

– Measuring in the upper, reducing part of the flame

– Sensitivity 0.2 ppm at 1 % absorption.

Lead

The determination of lead was only carried out to determine contaminations in technical additives such as zinc dialkyl dithiophosphate (DTP). The conditions to be met are

– Concentration range 5–50 ppm lead

.alcium determination (percentage by weight) in lubricating oils

type of additive	calculated value	measured AAS	FR	additionally contained
alkyl benzol sulphonate	1.09	1.08	1.12	–
alkyl salicylate	0.21	0.21	0.22	–
alkyl benzol sulphonate	0.031	0.029	0.031	–
alkyl benzol sulphonate	0.53	0.49	0.50	0.03 percent by weight of Ba in alkyl benzol sulphonate
alkyl salicylate	0.50	0.49	0.50	0.11 percent by weight of Ba in alkyl phenolate
alkyl benzol sulphonate	0.024	0.021	0.024	0.61 percent by weight of Ba in alkyl benzol sulphonate
alkyl benzol sulphonate	0.084	0.081	0.087	0.68 percent by weight of Ba in alkyl phenolate
alkyl salicylate	0.064	0.053	0.056	0.45 percent by weight of Zn and 0.43 percent by weight of Pb in zinc dialkyl dithiophosphate
alkyl benzol sulphonate	0.30	0.30	0.30	0.24 percent by weight of Zn and 0.23 percent by weight of P in zinc dialkyl dithiophosphate 0.19 percent by weight of Ba in alkyl phenolate

ıc determination (percentage by weight) in lubricating oils.

type of additive	calculated	measured	additionally contained
dialkyl dithiophosphate	0.45	0.45	0.064 percent by weight of Ca in alkyl salicylate
dialkyl dithiophosphate	0.088	0.086	0.08 percent by weight of Ba in alkyl benzol sulphonate
dialkyl dithiophosphate	0.24	0.24	0.30 percent by weight of Ca in alkyl benzol sulphonate and 0.19 percent by weight of Ba in alkyl phenolate

– 0.2 %

ng substances

nitrate – final concentration)

– Solvent acetic acid amyl ester

– Avoidance of chlorinous solvents

Lead

The determination of lead was only

tion of buffer substances

mic absorption spectrometry, the of hardly atomizable compounds tes, spinels) should be taken into n the combustion process, as this to erroneous measuring results. To such disturbing influences, buffer es (mostly inorganic salts) are added us solutions. Owing to the reduced on in organic solvents, an easy the organic medium is not ensured. ubstances tested included chloro- vell as two per cent ethanolic solu- lanthanum nitrate, lithium chloride ne (final concentration is shown in The best results were obtained with m nitrate g on e methy s aceti ac

Buffer c

calcium nitrate, calcium naphthenate (3.23% Ca), calcium alkyl salicylate (technical additive; 5.5% Ca), zinc acetate, zinc dialkyl dithiophosphate (technical additive; 8.8% Zn), lead naphthenate (technical additive, 23.8% Pb).

Especially with calcium it was found out that the anion exerts a considerable influence on the determination of the metal. Therefore, calibrating substances have to be used which are oil-soluble, and which contain anions of the same structure type as the compounds to be determined (Fig. 2, p. 304). No relevant anion influences were observed in the determination of zinc and lead, a state of affairs which is corroborated

Table 3 shows the results obtained by model-test lubricating oils (mean values from 5 measurements). The disturbance of the calcium determination by a surplus of phosphor, known already from aqueous systems, may also occur in the organic medium (Table 3, sample 8). This, however, is an extreme model case; in practice the content of phosphor is equal or smaller than that of calcium (sample 9).

Zinc

- Concentration range 0.5–6 ppm zinc (single passage of rays)
- Rotation of the burner through 30°
- Solvent methyl isobutyl ketone (than